प्रबुद्ध साहस
दिलगो खेनछे

प्रबुद्ध साहस

दिलगो खेनछे

Shechen Publications

Founded by H.H. Dilgo Khyentse Rinpoche

(Proprietors : Shechen Rabjam Public Charitable Trust, Boddhagaya, Bihar)

To the Corporate Body of the Buddha Educational Foundation
Taipei, Taiwan

From SamdrupTshering
Shechen Publications
New Delhi

January, 22nd, 2007

Dear Sir,
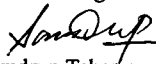
We are deeply appreciative of your wonderful efforts to help the spreading of the Buddha's teachings through support the free distribution of Buddhist teachings and book all over the world.

As part of an effort to revive the Buddhist teaching in their birth place, the sacred land of India, we have translated into Hindi language some precious teachings of Dilgo Khyentse Rinpoche on mind training. Dilgo Khyentse Rinpoche (1910-1991) was one of the most respected masters of the Tibetan Buddhist tradition and a teacher to His Holiness the Dalai Lama.

We would be extremely grateful, in the name of all those whom we can help through these teachings, if you Foundation could most generously consider printing of 5000 copies of the book that is now ready for publication.
The books will indeed be distributed for free to respectful readers,

With all our gratitude,

Samdrup Tshering
Shechen Publications

(Stamp: SHECHEN PUBLICATIONS ★ NEW DELHI ★)

EA-12, 2nd Floor, Inder Puri, New Delhi-110 012 (INDIA)
Tel.: 25834230 Fax : +91-11-25834238 E-mail : shechen@del3.vsnl.net.in
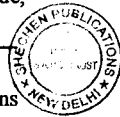
दिलगो खेनछे रिनपोछे

प्रबुद्ध साहस

अतिशा के सप्त बिंदु चित्त प्रशिक्षण की व्याख्या

हिन्दी अनुवाद : राजी

SHECHEN PUBLICATIONS
New Delhi

सेचेन पब्लिकेशन्स
ई ए – 12, सेकंड फ्लोर, इंदरपुरी
नई दिल्ली –110012, इंडिया
दूरभाष : 91–11–25834230
ई मेल shechen@del3.vsnl.net.in
वैबसाइट : www.shechen.org

9 8 7 6 5 4 3 2 1

Printed for free distribution by
The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation
11F., 55 Hang Chow South Road Sec 1, Taipei, Taiwan, R.O.C.
Tel: 886-2-23951198 , Fax: 886-2-23913415
Email: overseas@budaedu.org
Website:http://www.budaedu.org
Mobile Web: m.budaedu.org

Printed in Taiwan

विषय प्रवेश

दो शब्द !

तथागत सम्यकसम्बुद्ध ने अपने समस्त उपदेशों के सार को संक्षिप्त कर बुद्ध धर्म की परिभाषा के रूप में एक श्लोक दर्शाया है। यथा

'सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्तपरियोदपनं,एतं बुद्धान सासनं।।

अर्थात सभी अकुशल और उसके कारणों का प्रहाण करना, सभी कुशल कार्यों का सम्पादन करना और इन दोनों कार्यों को सम्भव बनाने के लिए अपने चित्त का शोधन करना, यही बुद्ध धर्म है। चित्त का संशोधन अथवा परिवर्तन सरल नहीं है, क्योंकि अविद्या के कारण असंख्य जन्मों से यह चित्त अनेक क्लेशों के प्रभाव से अत्यंत गहरे रूप में मलिन हो चुका है। व्यक्ति को अपनी रुचि एवं क्षमता के अनुसार अधम पुरुष के मार्ग से लेकर उत्तम पुरुष तक का मार्ग क्रमशः प्रशिक्षण एवं अभ्यास के द्वारा शोधित एवं विकसित करने की आवश्यकता है। भगवान बुद्ध के वचनों की विशालता एवं गंभीरता के कारण साधारण मानव गुरु के उपदेश के बिना बुद्ध धर्म को म्यक् रूप से समझना एवं अभ्यास करना संभव नहीं है। इसलिए बुद्ध से लेकर अपने गुरु पर्यन्त अविच्छिन्न गुरु परम्परा की उपदेश सन्तति को अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। भगवान बुद्ध द्वारा व्याकृत महायान के प्रवर्तक आचार्य नागार्जुन एवं आर्य असंग की उपदेशों की परम्परा को आचार्य दीपांकर श्रीज्ञान द्वारा तिब्बत में पुनः स्थापित करने के उपरांत महायान पद्धति की चित्त प्रशिक्षण की परम्परा अत्यंत विकसित हुई जो आज भी पूर्ण रूपेण प्रचलित है। इस परम्परा के विशाल वाड्मय के अंतर्गत सप्त बिंदु चित्त प्रशिक्षण एक प्रमुख प्रकरण है। यह इतना संक्षिप्त सरल और मर्मस्पर्शी है कि इसका तिब्बत की सभी विभिन्न परम्पराओं में समान रूप से परिशीलन किया जाता है। इसमें सम्पादित उपदेश विशेषकर इस तथाकथित आधुनिक कलियुग की परिस्थितियों से जूझने वाले मनुष्यों को हर परिस्थिति में बोधिचित्त व अपने आध्यात्मिकता को अक्षुण्ण बनाए रखना तथा सभी प्रतिकूल परिस्थितियों को अनुकूलता में परिणत करना और हर विषमता का समता में लेकर स्थिरचित्त बनाए रखने के अद्भुत उपायों को दर्शाते हैं।

परम पूज्य दिलगो खेनछे रिनपोछे भोटदेशीय महासिद्ध गुरुओं की परम्परा की एक महत्वपूर्ण कड़ी रहे हैं, जिन्होंने भोट देश में आकस्मिक बाधाओं से बुद्ध शासन की क्षति होने पर बाहरी देशों में बुद्ध धर्म को जीवंत रखने के महाकार्य को सम्पादित किया। उन जैसे विलक्षण विद्वान एवं सिद्धपुरुष का

प्रादुर्भाव इस कलियुग के अंत में होना आश्चर्य से कम नहीं है। उनके द्वारा अपने अधिगम व अनुभव के आधार पर दिए गए सप्त बिंदु प्रशिक्षण का भाष्य एक अद्वितीय अमृतवाणी है,जो सभी के लिए लाभदायक है। इस महत्वपूर्ण रचना का हिंदी अनुवाद कर पाठकों के समाने लाना एक पुनीत कार्य है। अतः अनुवादक कुलदुहिता राजी रमणन् साधुवाद की पात्र हैं। इससे अनेक पाठकों को दीर्घकालीन लाभ मिलेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।
इस 'दो शब्द' की प्रतीक्षा में यह गंथ प्रकाशित होने में कई माह विलम्ब हुआ, जिसके लिए मैं अपराध बोध के साथ क्षमा प्रार्थी हूँ।

जय जगत्!

एस रिनपोछे

कालन ट्रिपा

अनुवादक की ओर से

'जन्तूनां नरजन्म दुर्लभमतः ' सभी सत्वों में मनुष्य का जन्म बड़ा दुर्लभ है। मात्र मनुष्य में इतनी क्षमता है कि वह भव की वस्तुओं से परे अस्तित्व के विषय में कुछ सोच सके। उसका विवेक ही उसे अच्छे बुरे में अंतर करना समझाता है, उचित और अनुचित का ज्ञान देता है। और यह मात्र चित्त द्वारा ही संभव है। अपने चित्त के कारण ही मानव अनूठा है। पर महत्वपूर्ण बात है कि चित्त को एक निश्चित दिशा दी जाए और उसे प्रशिक्षित किया जाए। भोट परंपरा में इस प्रशिक्षण का स्वरूप अद्वितीय है। इस महत्वपूर्ण प्रशिक्षण पर परम पूज्य दिलगो खेनछे रिनपोछे की शिक्षा सभी इस मार्ग के पथिकों के लिए एक अनमोल देन है।

प्रबुद्ध साहस परम पूज्य दिलगो खेनछे रिनपोछे की रचना Enlightened Courage का हिंदी अनुवाद है। अतिशा और उनसे पूर्व के महान आचार्यों के समय से चले आ रहे सप्त बिंदु चित्त प्रशिक्षण के संप्रेषण की अटूट परंपरा का निर्वाह अनवरत रूप से हुआ है। परम पूज्य खेनछे रिनपोछे द्वारा सप्त बिंदु प्रशिक्षण का यह भाष्य उस परंपरा में एक ऐसा रत्न है जो अपने सौंदर्य और आभा से न जाने कितने ज्ञानान्वेषियों के मार्ग को प्रशस्त करेगा। एक सहज किंतु गंभीर शैली में रिनपोछे ने अत्यंत सरल उदाहरणों द्वारा अनित्यता, सत्य द्वय जैसे जटिल विषयों का संपेषण इस तरह किया है जो जिज्ञासुओं के लिए अमृत तत्व है।

महासिद्ध गुरुओं की परम्परा के इस महान आचार्य की रचना का अनुवाद करने का जो अवसर मुझे प्राप्त हुआ उसे मैं गुरु का आशीर्वाद ही मानती हूँ। जोंगसार जाम्यांग खेनछे रिनपोछे की मैं हार्दिक आभारी हूँ कि मुझे उनका प्रोत्साहन तथा शुभेच्छाएँ प्राप्त हुईं।

मैथ्यू रिकार्ड ने पुस्तक के मुखावरण के लिए चित्र की अनुमति दी, वे मेरे आभार के पात्र हैं। जिस सरलता ने उन्हें मुझे अपने चित्रों में से किसी का भी चयन करने का अवसर दिया वह मेरे लिए विस्मरणीय रहेगा।

मेरी बौद्ध धर्म साहित्य के अनुवाद की इस यात्रा में मुझ पर श्रद्धेय एस रिनपोछे की अत्यंत अनुकंपा रही है। अत्यंत व्यस्तता के बीच उन्होंनें समय निकालकर इस पुस्तक के लिए

दो शब्द लिखे यह मेरे लिए अत्यंत सौभाग्य की बात है। उनके यह दो शब्द मेरे लिए आशीर्वचन तुल्य हैं। उनके प्रति शब्दों में आभार प्रदर्शित करना संभव नहीं है। वे मेरे लिए परम श्रद्धेय है।

अंत में करुणा के साकार रूप परम पावन दलाई लामा जी के प्रति अपनी अपार और अगाध श्रद्धा समर्पित करना चाहूँगीं। उनकी करुणा और आशीर्वाद मुझे सदा प्राप्त हो इसी भावना के साथ उनके चरणों शत शत वंदन !

राजी

आमुख

बोधिसत्व वे हैं जो अन्य सत्वों के लिए निर्वाण की इच्छा रखते हैं। उनका मार्ग नैरात्म्य का मार्ग है जिसके द्वारा चित्त को साधारण आत्म केन्द्रित तल्लीनता और चिंता से परे जाने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है और क्रमशः अन्य लोगों को उसके केन्द्र में रखना सिखाता है। यह परोपकारी व्यवहार महायान की बुद्ध की सभी शिक्षाओं का आधार और केन्द्र है। दार्शनिक अंतर्दृष्टि और साधना अभ्यास की यह प्रणाली जो कि ग्रंथों और भाष्यों में वर्णित है आजकल इन सभी विस्तृत ग्रंथों के पढ़ने के लिए समय निकालना ही कठिन है, उन्हें समझने की बात तो दूर की रही।

दूसरी ओर सप्त बिंदु चित्त प्रशिक्षण एक संक्षिप्त रूप में बोधिसत्व अभ्यास की व्याख्या करता है। इसमें *टोंगलेन* साधना (दुख के स्थान पर सुख के आदान प्रदान की कल्पना) से लेकर जीवन की कठिनाइयों को किस प्रकार मार्ग में विकास के साधन के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है,निहित है।

यह उपदेश सबसे पहले 11वीं शताब्दी में तिब्बत में महान भारतीय आचार्य अतिशा लेकर आए थे जिन्होंने स्वयं अपने समय के सुविख्यात आचार्यों से शिक्षा ली थी। अतिशा के मुख्य शिष्य ड्रोंमटोंपा ने इन्हें चेखावा येशे दोर्जी को दी जिन्होंने इन्हें लिखित रूप में इनका संकलन किया। सप्त बिंदु चित्त प्रशिक्षण का प्रेषण एक अनटूटी परंपरा के रूप में आज तक चला आ रहा है।

भूटान में उनके देह त्याग के पूर्व 1990 के ग्रीष्म काल में अपनी फ्रांस की अपनी अंतिम यात्रा के दौरान यह पुस्तक ख्याब्जे दिलगो खेटछे रिनपोछे द्वारा दी गई शिक्षा श्रृंखला का अनुवाद है। प्रसिद्ध आचार्य गुल्चु थोग्मे ज़ाग्पो के भाष्य पर स्वयं को आधारित कर रिनपोछे ने डोरडोन में अपने निवास स्थान में ला सोनेरे के बागीचे में लगे एक विशाल तंबू में तीन सौ लागों की एक विशाल जन सभा को को संबोधित किया – परिस्थितियों का विवरण उन्होंने अपने उपदेश के दौरान दिया है। यह तथ्य कि रिनपोछे इस संसार से विदा ले चुके हैं उनके शब्दो को बहुत मार्मिकता देता है जो उनके कई शिष्य एक विदा के उपहार के रूप में देखते हैं। और उनके प्रति एक गहन श्रद्धा और उनके पुनः लौटने की सच्ची प्रार्थना के कारण हम इस अनुवाद को प्रकाशन के लिए दे पा रहे हैं। इस पुस्तक में खेटछे रिनपोछे की शिक्षा के पहले चेखावा का संपूर्ण मूल ग्रंथ चित्त प्रशिक्षण के सप्त बिंदु दिया गया है जिसकी हर पंक्ति व्याख्या के साथ प्रकाशित हुई है। और शिक्षा के अंत में हमने चित्त प्रशिक्षण से संबंधित एक भक्ति प्रार्थना

को भी सम्मिलित किया है जिसकी रचना जाम्यांग खेटछे वांगपो द्वारा की गई है जो कि प्रथम खेटछे थे जब वे तिब्बत में अतिशा के निवास पर गए।

इसका उल्लेख करना भी उचित होगा कि जब रिनपोछे ने यह शिक्षा दी तो वह एक ऐसे समूह को संबोधित कर रहे थे जिसमें पहले से ही बौद्ध सिद्धांतों, नामों और परंपरा से परिचित बौद्ध अभ्यासी शामिल थे। यह जानते हुए कि यह पुस्तक एक व्यापक पाठक वर्ग तक पहुँचेगी, हमने पाद टिप्पणी और शब्दावली भी सम्मिलित कर ली है जो यद्यपि बहुत विस्तृत तो नहीं पर उन पाठकों के लिए ज्ञानप्रद होगी जो बौद्ध विचारों से अपरिचित हैं।

रिनपोछे के शब्दों का लिप्यांतरण ओर अनुवाद खेटछे जिगमें रिनपोछे द्वारा और संपादन वुलस्टान फ्लेचर द्वारा किया गया साथ ही क्रिस्टीन परमिल्ड, माइकेल अब्रम्स, हेलेना ब्लांकलेडर, एन बेनसन, स्टीफेन गेथिन, चार्ल्स हेस्टिंग्स और जॉन कांटि पद्माकर अनुवाद वर्ग के इन सभी सदस्यों का योगदान सराहनीय है।

मूल ग्रंथ

प्रथम पूर्व योग का अध्ययन करें

सभी पदार्थों को स्वप्न के समान मानो
सचेतन के अजन्मे प्रकृति का विश्लेषण करो
प्रतिपक्ष स्वयं ही अदृश्य हो जाएगा
मार्ग की प्रकृति आलय में है
ध्यानोपरांत सभी पदार्थों को भ्रांत मानो
एक के बाद एक, देने और लेने का प्रशिक्षण लो
उन दोनों को अपनी श्वास पर धारण करो
त्रिपदार्थ, त्रिविष और त्रिशुभ के मूल
अपने सभी कर्मों में स्वयं को सूक्तियों से प्रशिक्षित करो
प्रशिक्षण का सिलसिला स्वयं से प्रारंभ करो

जब संपूर्ण विश्व बुराइयों से भर जाए
तो सभी गतिरोधों को मुक्ति के मार्ग पर छोड़ दो
सब के लिए एक को दोषी ठहराओ
सभी सत्वों की दया के विषय में चिंतन करो
शून्यता एक अद्वितीय रक्षक है
जिससे भ्रामक दृष्टि चार काय जैसी गोचर होती है
उपायों में श्रेष्ठ चार अभ्यासों का होना है
अप्रत्याशित को मार्ग पर लाने के लिए
तत्काल ही प्रशिक्षण प्रारंभ करो

मूल उद्देश्य का लघु संक्षेपीकरण :
पाँच शक्तियों का अभ्यास करो
कैसे मृत्यु का वरण किया जाए महायान की शिक्षा
यह पाँच शिक्षाएँ हैं, यह महत्वपूर्ण है कि तुम किस तरह क्रियाशील होते हो

सभी धर्मों का एक ही उद्देश्य है
दोनों साक्षियों में बेहतर पर निर्भर रहो
सदा हर्ष उल्लास की निरंतरता बनाए रखो

अनुभव से तुम अन्यमनस्क होने पर भी अभ्यास कर सकते हो
सदैव तीन सामान्य बिंदुओं पर प्रशिक्षण लो
अपने व्यवहार को परिवर्तित कर उस पर दृढ़ रहो
दुर्बलताओं की चर्चा मत करों
दूसरों के कार्यों पर अपना निर्णय मत दो
अपने प्रबलतम क्लेश पर सबसे प्रथम ध्यान दो
विषैला खाना छोड़ दो
कर्तव्य भावना के कारण संकीर्ण मत बनो
अपशब्दों का प्रत्युत्तर अपशब्दों द्वारा मत दो
घात लगाकर प्रतीक्षा मत करो
दुर्बलताओं पर चोट मत करों
ज़ो के भार को बैल की पीठ पर मत रखों
छिपी नीयत से प्रशंसा मत करो
उपाय का दुरुपयोग मत करो
किसी देव को असुर के स्तर तक नीचे मत लाओ
दुःख से लाभ मत उठाओं

एक ही प्रेरणा से सब करो
कटिन परिस्थितियों में केवल एक ही इलाज का प्रयोग करो
दो चीज़ें की जानी चाहिए, प्रारंभ में और समाप्ति पर
दोनों में से जो भी हो जाए उसे सहन करो
चाहे सभी केवल एक उद्‌देश्य से करो
चाहे तुम्हें अपनी जान की कीमत क्यों न चुकानी पड़े, पर दोनों को बचाओ
अपने आप को तीन कठिन अनुशासनों में प्रशिक्षित करो
तीन आवश्यक तत्वों का आश्रय ग्रहण करो
तीन उन वस्तुओं पर ध्यान करो जिनका क्षय न हो
अपृथक रूप से तीन वस्तुओं को बनाए रखो
बिना पक्षपात के हर क्षेत्र में प्रशिक्षण ग्रहण करो
तुम्हारा प्रशिक्षण गहन और व्यापक हो
जो वर्जनीय हो उस पर सदा ध्यान करो
बाह्य तत्वों पर निर्भर मत रहो
इस बार जो महत्वपूर्ण है उसे करो
गलतियाँ मत करो
अपने अभ्यास में स्थिर रहो

अपने प्रशिक्षण के प्रति उत्साही बनो
स्वयं को विश्लेषण एवं परीक्षण द्वारा मुक्त करो
जो तुम कर रहे हो उसे बहुत अधिक गंभीरता से मत लो
बुरे स्वभाव का मत बनों
तुनुकमिज़ाज़ी मत हो
प्रतिफल की आशा मत करो

इन उपदेशों का छना सार
जो कि पॉच अधःपतन की लहर का रूपातंरण
निर्वाण के मार्ग में करता है
सरलिंगपा द्वारा दिया गया था
पूर्व प्रशिाक्षण के कर्मों को ज्राग्रत कर
और प्रबल प्रेरणा से युक्त हो
मैंने दुःख और निंदा को अनदेखा कर दिया
और अपने आत्म ग्राह्यता के शमन के लिए उपदेशों की शरण ली
यद्यपि मेरी मृत्यु हो जाएगी पर अब मुझे कोई पश्चाताप न होगा

भूमिका

महान करुणाशील चेनेरेज़िग के प्रति मेरी श्रद्धा !
त्रि प्रशिक्षण में जो निष्णात
औ द्वि बोधिचित्त में प्रवीण,
आपने किया बुद्ध की शिक्षाओं का प्रसार चहुँ ओर;
सिद्धांत धर के शिरोमणि,
अद्वितीय गुरु करता हूँ वंदन मैं तुमको !

अतीत, वर्तमान और आगत बुद्धों के एकमात्र मार्ग,
प्रत्येक अच्छाई और आनंद की आधार निधि,
अपने गुरु के शब्दों का कर पालन,
इस सिद्धांत की करता हूँ मैं व्याख्या
भाग्यवान शिष्यों द्वारा जिसके लिए निरंतर प्रार्थना की गई।

वे सभी जो परम और अद्वितीय निर्वाण की इच्छा रखते हैं उन्हें सांवृतिक और पारमार्थिक बोधिचित्त के अभ्यास का प्रयास करना चाहिए।
कदम्पा आचार्यों की कई शिक्षाएँ विस्तृत, मध्यम और संक्षिप्त रूप में कहीं गई हैं उन सबका निचोड़ इस ग्रंथ में महान बोधिसत्व गुल्चु थोगमे ज़ोगपो द्वारा रचित *चित्त प्रशिक्षण के सप्त बिंदु* में देखने को मिलता है। प्राचीन काल में जब भारत में बौद्ध धर्म प्रचलित था, श्रावकयान और महायान के संघ अलग अलग अभ्यास करते थे; महायान के सिद्धांत श्रावकयानियों को सिखाए नहीं जाते थे। इसका कारण यह नहीं था कि शिक्षक श्रावकयान का पालन करने वालों के विरोधी थे; बात केवल इतनी थी कि यदि महायान को इस पृष्ठभूमि में सिखाया जाता तो उसका श्रोताओं के चित्त पर कोई प्रभाव न पड़ता,वे इसका गलत अर्थ निकालते। अतः महायान को गुप्त रूप में रखा गया और केवल बाद में गुरु रिनपोछे के आशीर्वाद से ही सूत्रयान और मंत्रयान का संपूर्ण धर्म उन्मुक्त रूप से बर्फ के प्रदेश तिब्बत में फैला। अतः केवल गुरु रिनपोछे की कृपा से बौद्ध धर्म में प्रवेश करने के कारण, शरण गमन के व्रतों को स्वीकार करने और इस प्रकार की कामना से कि सभी सत्वों को त्रिरत्नों की सुरक्षा मिले,हम आज अपने आप को महायान के मार्ग पर पाते हैं।
महायान के दो अंग हैं ,गहन और विस्तृत। गहन की व्याख्या अभिसमयालंकार में और विस्तृत की उत्तरतंत्र में हुई है, ये दो ग्रंथ जिनका क्रमशः द्वितीय और

तृतीय धर्म चक्र प्रवर्तन से संबंध है। इन दोनों का सूत्रालंकारशास्त्र में संक्षेपीकरण किया गया है जो कि बोधिसत्व के व्यापक और सागर सम क्रियाकलापों को समक्ष रखता है। इन सब की विस्तृत व्याख्या विद्वान आचार्यों द्वारा दी जा सकती है पर संक्षेप में हम महायान के गहन और व्यापक रूप को बोधिचित्त के दो रूप सांवृतिक और पारमार्थिक के अभ्यास में निहित पाते हैं।
सांवृतिक बोधिचित्त का अभ्यास साधारण धारणात्मक चित्त के आधार पर किया जाता है और इसकी प्राप्ति पूर्ण रूप से संभव है, एक, प्रारंभिक अभ्यासी के लिए भी बशर्ते वह अपने अंदर झांक कर देखे और उचित ढंग से अभ्यास करे। जब इस सांवृतिक बोधिचित्त को परिष्कृत कर लिया जाता है तो पारमार्थिक बोधिचित्त, विपश्यना की प्रज्ञा, नैरात्म्य की अनुभूति स्वयंभूत होती है। काग्यूद्पा इसे ही महामुद्रा के नाम से पुकारते हैं और निंगमापा,जोगदेन, ये अभ्यास हमारी परिधि से परे है। क्योंकि यदि वे शिशु जिन्हें अभी भी दूध दिया जा रहा है को ठोस खाना दिया जाये जैसे कि फल, चॉवल अथवा मॉस तो वे उन्हें पचाने मे असमर्थ होंगें, ठीक इसी तरह पारमार्थिक बोधिचित्त ऐसा नहीं है जिसका हम प्रारंभ से ही अभ्यास कर सकें। इसी कारण हमें सांवृतिक बोधिचित्त के अभ्यास से ही प्रारंभ करना चाहिए।
नागार्जुन ने एक बार कहा था

यदि हम और समूचा विश्व,
अद्वितीय निर्वाण की कामना करें
तो उसका आधार बोधिचित्त है
जो कि सुमेरू सा स्थिर है
सभी दिशाओं को छूती जिसकी करुणा है,
और प्रज्ञा जो द्वैतातीत है

हम सांवृतिक बोधिचित्त की कल्पना दो पक्षों से युक्त रूप में कर सकते हैं एक तो शून्यता की और दूसरी करुणा की। यदि हम करुणा के अभ्यास में स्थापित हैं, तो हम श्रावकों और प्रत्येकबुद्धों के मार्ग में नहीं भटकेगें; और यदि हम शून्यता के दृष्टिकोण पर आश्रित रहें तो हम संसार के तीन लोकों में नहीं भटकेंगे। पूर्ण प्रबुद्धता वास्तव में संसार और निर्वाण से विमुक्ति है। करुणा और शून्यता की समझ का होना अपनी गाड़ी में पहिए के होने जैसा है। यदि चारों मौजूद हों तो वह मोटर सड़क पर चलने योग्य है, पर यदि एक पहिया ग़ायब हो, तो कहीं जाना असंभव होगा। बिना करुणा के शून्यता पर ध्यान, महायान

पंथ नहीं है, करुणा पर ध्यान जहाँ शून्यता के तत्व का अभाव हो वह भी मार्ग नहीं है। हमें शून्यता और करुणा दोनों की आवश्यकता है।
सप्त बिंदु चित्त प्रशिक्षण के अनुदेश का जन्म आचार्य अतिशा के तीन महान शिक्षकों से हुआ। गुरु मैत्रियोगिन जो बड़ी सहजता से दूसरों का दुःख स्वयं पर ले सकते थे, गुरु धर्मरक्षित जिन्होंने प्रेम और करुणा पर ध्यान कर शून्यता की अनुभूति की यहाँ तक कि अपने माँस का भी त्याग कर दिया और गुरु धर्मकीर्ति जो सेरलिंग में रहे, स्वर्णद्वीप (जो आज इंडोनीशिया का एक भाग है) और जिन्होंने अपना सारा जीवन बोधिचित्त के अभ्यास में लगा दिया।
ऐसी कथा प्रचलित है कि एक दिन जब मैत्रियोगिन शिक्षा दे रहे थे; एक कुत्ता किसी पर भौंका, जिसने क्रोध में भरकर उस कुत्ते पर एक पत्थर दे मारा। कुत्ते को पसलियों में चोट लगी और वह चीखा। उस जानवर के गहन दुःख का अनुभव कर गुरु रो उठे और सिंहासन से गिर गए। 'यह तो बहुत ज्यादती है,' उनके शिष्यों ने सोचा। यह जानते हुए कि वे क्या सोच रहे हैं मैत्रियोगिन बोले,' मेरी पसलियों की ओर देखो'। और उनके शरीर पर ठीक उसी स्थान पर जहाँ कुत्ते को पत्थर द्वारा चोट लगी थी, एक घाव था। उन्होंने उस जानवर की चोट को अपने पर ले लिया था।
एक अन्य अवसर पर जब धर्मरक्षित नालंदा के विश्वविद्यालय में थे, तो एक आदमी बहुत बीमार था, उसकी शक्ति पूर्ण रूप से जा चुकी थी। वैद्यो ने उससे कह दिया था कि वे उसे किसी भी प्रकार से ठीक नहीं कर सकते; ठीक होने की केवल एक ही संभावना किसी जीवित व्यक्ति के माँस के मिल जाने से थी। वह रोगी बहुत निराश था कि उसे किस प्रकार यह प्राप्त हो सकता है। धर्मरक्षित को जब यह पता चला तो उन्होंने उस आदमी से कहा, 'यदि इससे तुम्हारी बीमारी ठीक हो सकती है तो तुम मेरा माँस ले सकते हो'। उसके बाद उन्होंने अपनी जंघा से माँस का एक टुकड़ा काटा और उस बीमार आदमी को दे दिया जो उसे खाकर बिलकुल ठीक हो गया। अब उस समय तक धर्मरक्षित शून्यता की प्रकृति को नहीं समझ पाए थे अतः वह धाव बहुत ही पीड़ाजनक था, विशेषकर रात में, जब वे मठ में निद्रा के लिए लेटे। इसके बावजूद उनके मन में ऐसा विचार नहीं आया कि उन्होंने कोई बड़ा त्याग किया हो और उनके मन में तनिक भी पश्चाताप का भाव नहीं था। जैसे ही सूर्योदय की वेला निकट आई, उन्हें हल्की नींद आई और उन्होंने स्वप्न देखा कि उनके सामने श्वेत आभा युक्त और अत्यंत सुंदर एक युवा खड़ा था।
युवा बोला : हमें सत्वों के लिए इसी प्रकार के बोधिसत्व कार्य करने चाहिए। तुम्हारा घाव कितना पीड़ा जनक है?'

जब धर्मरक्षित ने उत्तर दिया तो, वह बालक जो वास्तव में चेनरेज़िग थे उस घाव पर अपना हाथ फेरा और एक हल्की फूँक मारी। इस तरह धर्मरक्षित को उनका आशीर्वाद प्राप्त हुआ। जब वे जागे, तो वह चोट पूरी तरह से ठीक हो चुकी थी,उन्हें कोई पीड़ा नहीं थी और वह शून्यता के स्वरूप का अनुभव कर चुके थे।

धर्मकीर्ति सागर के समीप रहते थे और गुरु सेरलिंगपा, स्वर्ण द्वीप के गुरु कहलाते थे। अतिशा उनके साथ बारह वर्ष तक रहे और उनके निर्देशों का अभ्यास करते रहे। परिणाम यह हुआ कि बोधिचित्त ने उनमें गहरी जड़े जमा लीं थीं। इसके पश्चात भी यद्यपि उनके कई गुरु थे पर उनकी आदत थी कि जब भी उनके नामों की चर्चा होती तो वे अपने हाथ अपने ह्रदय स्थान पर जोड़ लेते पर गुरु सेरलिंगपा का नाम सुनते ही वे सिर के शीर्ष भाग पर हाथ जोड़ लेते और रोने लगते। वे अपने अन्य शिक्षकों की बरसी हर वर्ष मनाते, पर सेरलिंगपा का देह त्याग वह हर मास मनाते। उनके शिष्य उनसे पूछा करते थे,' अपने अन्य गुरुओं के प्रति तुम अपनी श्रद्धा बिलकुल अलग ढंग से व्यक्त करते हो। इसका कारण क्या यह है कि उनकी प्रज्ञा में अंतर था?'

अतिशा ने उत्तर दिया,' बिना किसी अवपाद मेरे सभी गुरुओं ने परम स्थिति की प्राप्ति की। उनमे से कोई भी साधारण प्राणी नहीं था; उनके गुणों में कोई अंतर नहीं था। पर केवल सेरलिंगपा के कारण ही बोधिचित्त ने मेरे अंदर जड़े जमा ली हैं। अतः मेरी कृतज्ञता में अंतर है। 'सेरलिंगपा की परंपरा में मैत्रियोगिन और धर्मरक्षित की शिक्षाएँ निहित हैं। इसे समझाने के कई ढंग हैं पर कदम्प आचार्य चेकावा येशे दोर्जे के अभ्यास का पालन करते हुए यह सप्त बिंदु चित्त प्रशिक्षण में निहित हैं।

I
बोधिचित्त अभ्यास का आधार

सबसे पहले पूर्व योग का अध्ययन कर लें

इस उपदेश के पारंभ में हमें तीन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है : एक मानव के रूप में जन्म प्राप्त करने की बहुमूल्यता, अनित्यता और सांसारिक समस्या।

मानव जन्म

इस समय हमें बहुमूल्य मानव जीवन मिला है जो अठारह गुणों से विभूषित है जिनकी प्राप्ति अत्यंत कठिन है। यदि बुद्ध की शिक्षा का अभ्यास उचित रूप से किया जाए तो यह शरीर अतीव महत्वपूर्ण है।

उचित प्रयोग से यह शरीर विमुक्ति का यान बन सकता है
अन्यथा है यह संसार में निरंतर बनाए रखन वाली बन सकती है
इस प्रकार यह शरीर सभी अच्छे ओर बुरे का आधार

व्यक्ति जो कि निर्वाण का इच्छुक है उसके लिए स्वर्ग लोक जहॉ जीने के लिए अमृत है सभी इच्छाएँ कल्प तरु से पूरी हो जाती हैं, न तो थकान है न ही कोई कठिनाई, न ही कोई व्याधि है और न ही बुढ़ापा,,देवताओं के रूप में जन्म लेने से कहीं श्रेयस्कर है कि वह एक मानव का जन्म ले। क्योंकि आठ स्वतंत्रताओं और दस विशिष्टताओं से युक्त एक मनुष्य के रूप में ही इस कल्प के सहस्त्र बुद्धों ने बुद्धत्व प्राप्त किया है अथवा भविष्य में भी करेगें न कि देवता के रूप में जन्म लेकर। अतः यह मानव जन्म किसी के बल प्रयोग अथवा केवल संयोग से नहीं मिलता अपितु यह सकारात्मक कार्यों का परिणाम है। चूँकि सत्वों द्वारा सकारात्मक कायों का संपन्न होना एक विरली बात है अतः एक बहुमूल्य मानव जन्म की प्राप्ति वास्तव में कठिन है। जो भी हो हमें इस समय ऐसा जन्म मिला है, हम बौद्ध धर्म के संपर्क में आए हैं, मार्ग में प्रविष्ट हो चुके हैं और अब उपदेश ग्रहण कर रहे हैं। पर यदि हम उनके उपदेशों को जीवन में न उतारें तो उनके श्रवण मात्र से हमें संसार से विमुक्ति नहीं मिल सकती और वह सहायक सिद्ध नहीं हो सकती जब हमें जन्म, व्याधि, वृद्धावस्था और मृत्यु जैसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। बीमार पड़ने पर यदि हम डॉक्टर के

नुसखें का पालन न करें तो फिर वह डॉक्टर निरंतर हमारे सिरहाने ही क्यों न बैठा रहे हमारी पीड़ा नहीं जाएगी।

अनित्यता

जैसा मैंने अभी कहा यदि हम शिक्षा के अभ्यास की उपेक्षा कर दें तो उससे हमें कोई लाभ न होगा। वहीं हमारा जीवन सुकुमार और अनित्य है और क्षणभंगुर है। चूँकि मृत्यु और उसके कारण अनिश्चित हैं, हम किसी भी क्षण उसके ग्रस्त हो सकते हैं। हम सोच सकते हैं, 'अरे जब मैं और अधिक उम्र को हो जाऊँगां तो उनका अभ्यास करूँगां लेकिन अब जब मैं जवान हूँ तो धर्म को भूलकर सोचता मैं एक साधारण जीवन जीते हुए धन कमाकर, अपने प्रतिद्वंद्वियों को हरा कर और अपने मित्रों की सहायता आदि आदि करता हुआ जीवन जीऊँगा।' पर तथ्य यह है कि शायद हम लंबी वृद्धावस्था तक जीवित ही न रहें। उदाहरण के लिए उन लोगों के बारें में सोचें जो कि उसी समय पैदा हुए थे जब हम पैदा हुए थे। कुछ की तो बचपन में ही मृत्यु हो गई कुछ की युवावस्था में काम करते हुए आदि आदि। हो सकता है कि हमारा अपना जीवन भी बहुत लंबा न हो।

इसके अलावा एक पशु की तुलना में मानव जीवन को प्राप्त करना लगभग असंभव सा लगता हैं। गर्मी में यदि तुम मिट्टी के एक ढेले को देखो तो उसके अंदर तुम्हें शायद संपूर्ण फ्रांस की जनसंख्या की तुलना में अधिक प्राणी दिखाई देंगें। इसलिए हम यह कहते हैं कि केवल संख्या के दृष्टिकोण मात्र से ही मानव जन्म प्राप्त करना कठिन है। अतः हमें यह निश्चय कर लेना चाहिए कि अपने जीवन को निरर्थक कार्यो में झोंकने की बजाय धर्म का अभ्यास करें। बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए इस मानव जीवन को काम में लाना बहुमूल्य रत्नों की खोज में समुद्र को पार करने और वहॉ से हर प्रकार की कीमती वस्तुओं के साथ घर लौटने के समान है; खाली हाथ लौटना उसी प्रकार का है ! हमें अनमोल मानव जीवन मिला है और हमने बुद्ध की शिक्षाओं को जान लिया है। गुरुओं के आशीर्वाद और दया भावना से हमारे लिए इन सिद्धांतों की प्राप्ति, अध्ययन और अभ्यास संभव हो सकी है। पर यदि हम इस जीवन के केवल सांसारिक गतिविधियों : व्यापार, कृषि, शत्रुओं पर हावी होना, मित्रों की सहायता, एक महत्वपूर्ण पद की आशा इत्यादि को लेकर ही व्यस्त रहें और आध्यात्मिक अभ्यास के लिए समय निकालने से पहले ही मर जाएँ।तो वह रत्नों के द्वीप में पहुँचकर भी वहॉ से खाली हाथ घर लौटने जैसा ही होगा। कितनी बड़ी बरबादी है! इसलिए हमें स्वयं सोचना चाहिए,' मैं अपने इस सुअवसर को नहीं छोड़ूँगां। जब मुझे यह अनमोल अवसर मिला है तो मैं धर्म का अभ्यास करूँगां।' निश्चित रूप से सबसे उत्तम तो यह होगा कि हम जीवन भर अभ्यास करें; अन्यथा कम

से कम हमें उचित रूप से शरण ग्रहण तो करनी ही चाहिए, क्योंकि यही बौद्ध धर्म का आधार है और दुर्गति के द्वार को बंद करता है। यह एक ऐसा सार्वभौमिक प्रतिकारक है जिसका प्रयोग किसी भी कठिनाई के समय किया जा सकता है और इसलिए इसका अभ्यास अत्यंत महत्वपूर्ण है।

यद्यपि भाषा अंतर के कारण इस क्षण आप मुझे समझ नहीं पा रहे हैं पर आप सब इस बात से परिचित हैं कि मैं आपको कुछ निर्देश दे रहा हूँ। मेरे जाने के पश्चात आपके लिए सब कुछ अनूदित कर दिया जाएगा और आपको प्राप्त होगी,' संभव है आप समरण करें उस लामा ने हमें कुछ महत्वपूर्ण बातें बताईं थीं; मुझे उनका अभ्यास करना चाहिए '। यदि आप अपने दैनिक जीवन में ऐसा करें तो मेरे उपदेशों को कुछ सार्थकता प्राप्त होगी।

संसार की कमियॉ

सुख और दुःख के अनुभव सकारात्मक और नकारात्मक कर्मों से आते हैं; अतः जितना संभव हो सके बुराइयों का त्याग करना चाहिए और सद्‌गुणों का परिष्कार करना चाहिए।

तृण में रहने वाला छोटे से छोटा कीड़ा भी सुखी रहना चाहता है। लेकिन वह सुख के हेतुओं का संभार करना नहीं जानता अर्थात सकारात्मक कार्य और न ही दुःख के हेतुओं से बचना जानता है जो कि बुरा आचरण है। जब जानवर एक दूसरे को मारकर खा जाते हैं तो वह सहज ही नकारात्मक कार्य करते हैं। वे सुख की कामना करते हैं पर वे मात्र अपने दुःख के कारणों को जन्म देते हैं और वह केवल दुःख का अनुभव करते हैं। यह उनकी अविद्या और भ्रांति का परिचायक है। पर हम तो मानव हैं।यदि वास्तव में मानव को सत्य से परिचित कराया जाए तो वह अपने जीवन की भी चिंता न करते हुए वे उसी सद्‌गुण को पाप्त करेंगें जिसे वे अपने सुख के स्त्रोत के रूप में पहचाना है। बुद्ध की शिक्षा का सार इस बात की स्पष्ट समझ है कि किस प्रकार के आचरण को ग्रहण करना चाहिए और किसका त्याग करना चाहिए।

दुष्कर्मों का कर परित्याग
अभ्यास करें सद्‌गुणों का
करें शमन चित्त को
है यही बुद्ध का उपदेश

इस क्षण हमने दुर्लभ मानव जीवन को प्राप्त किया है, हमारे पास अच्छे और बुरे की समझा के लिए विवेक है और इसलिए हमें उन सभी नकारात्मक कार्यों को स्वीकार करना चाहिए जो हमने अपने कई पूर्व जन्मों से अब तक किए हैं। और अब से हमें ऐसे सभी छोटे बड़े कार्यों से बचना चाहिए जिस तरह हम अपनी ऑखों में किरकिरी आने से बचते हैं। हमें निरंतर जॉच करते रहना चाहिए कि

हम क्या कर रहे हैं; और हमने जो भी नकारात्मक कार्य किए हैं उन्हें तत्काल ही स्वीकार करना चाहिए और सभी सकारात्मक कार्यों को दूसरों के प्रति समर्पित करना चाहिए। मारी क्षमतानुसार हमें दुष्कर्मों का परित्याग करना चाहिए और अच्छाई के संभार का प्रयास करना चाहिए।

II
बोधिचित्त

बोधिचित्त बुद्धत्व प्राप्ति के लिए कभी असफल न होने वाला उपाय है। इसके दो अंग हैं, सांवृतिक और पारमार्थिक। सांवृतिक बोधिचित्त का अभ्यास साधारण मानसिक प्रकियाओं द्वारा होता है और इसका विकास अपेक्षाकृत सहज है। परन्तु इससे जो लाभ प्रवाहित होते हैं वे अपार हैं क्योंकि जिस चित्त में बोधिचित्तोत्पाद हुआ है वह संसार के निम्न लोकों में कभी गिर नहीं सकता। और अंत में महायान पंथ के सभी गुण जो कि सागर के समान अथाह और विस्तृत हैं वे बोधिचित्त में परिशुद्ध और सार रूप में निहित हैं।

इस अभ्यास की तैय्यारी के लिए हमें चेनरेज़िंग अवलोकितेश्वर की साधना के निर्देश का पालन करना चाहिए। त्रिरत्नों की शरण में जाकर बोधिचित्त पर ध्यान करें। यह धारणा करें कि अपने काय, वाणी और चित्त के सभी कुशल कार्य विस्तृत आकाश के सम अनेकानेक सत्वों के लिए हैं।

उपदेशों में कहा गया है कि,' सत्व संख्या है अनगिनत इसलिए उनकी भलाई की कामना भी असीमित हैं।' सोचिए कि उनकी संख्या कितनी है। कल्पना कीजिए कि इसी लॉन में उनकी संख्या करोड़ों करोड़ों में होगी।' यदि हम उन सभी को बुद्धत्व की अवस्था में प्रतिस्थापित करना चाहते हैं, तो ऐसा कहा जाता है कि इस प्रकार के उद्देश्य का लाभ उतना ही व्यापक होगा जितनी कि सत्वों की महत् संख्या है। अतः हमें अपने बोधिचित्त को एक विशिष्ट सत्वों की संख्या तक सीमित नहीं करना चाहिए। जहॉ तक आकाश है, सत्वों का निवास है, सभी दुःख में जीवन जी रहे हैं। हम उन के बीच अंतर क्यों करें, क्यों कुछ का स्वागत स्नेहपूर्ण मित्रों के रूप में करें और अन्यों को प्रतिकूल शत्रुओं के रूप में त्याग दें?

हमारे जीवन की धाराओं में अनादि काल से आज तक हम सभी संसार में बुराइयों को जमा करते हुए भटक रहे हैं। जब हमारी मृत्यु होगी तो पाताल लोक में जाने के अतिरिक्त हमारे पास जाने के लिए और कौन सी जगह है? पर यदि हमारे अंदर यह इच्छा और विचार उठता है कि हमें सभी सत्वों को बुद्धत्व की अवस्था में लाना है तो हमने अपने उद्देश्य में बोधिचित्त का अर्जन कर लिया है। फिर हमें अपने गुरु और इष्ट देवताओं से प्रार्थना करनी चाहिए कि बहुमूल्य बोधचित्त का अभ्यास हमारे ह्रदय में जड़े बना ले। अब प्रणिधा राज मे कहे सप्तांग प्रार्थना करनी चाहिए और सीधे बैठकर बिना उलझे, कोई गिनती

ना छोड़े बिना ध्यान भंग अपनी श्वासों की गिनती करनी चाहिए। यदि हम पूरी एकाग्रता से एक पूरी माला के लिए अपनी श्वासों की गिनती करें तो क्लेशयुक्त विचार कम हो जाएँगें और सांवृतिक बोधिचित्त का अभ्यास अपेक्षाकृत सरलता से हो जाएगा। ध्यान के लिए इसी प्रकार सुपात्र बना जा सकता है।

परमार्थ बोधिचित्त

सभी पदार्थों को स्वप्न के समान देखें

यदि हमारे शत्रु हैं तो हम उन्हें सदा के लिए वैरी मान लेते हैं। शायद हमें ऐसा लगता है कि वे अतीत में हमारे पुरखों के शत्रु रहे हैं, वे आज भी हमारे विरुद्ध हैं और भविष्य में वे हमारे बच्चों से घृणा करेंगें। संभवतः यह हमारा विचार है पर वास्तविकता बिलकुल अलग है। तथ्य तो यह है कि हम नहीं जानते कि अपने पूर्व जन्मों में हम कहाँ और कौन थे इसलिए ऐसा कुछ निश्चित नहीं है कि वे अहितकारी लोग जिनसे हमारा पाला पड़ता है वे हमारे पूर्व जन्मों में हमारे माता पिता रहे हों ! हमारी मृत्यु होगी तब हमें ज्ञात नहीं कि हमारा पुनर्जन्म कहाँ होगा अतः हम यह नहीं जान सकते कि हमारे यह शत्रु किसी जन्म में हमारे माता पिता नहीं बनें हों। इस समय हमारे मन में अपने माता पिता के प्रति संपूर्ण विश्वास और आदर है,वे हमारे इतने प्रिय हैं पर जब वे इस जीवन से जाएँगें तो कौन कह सकता है कि वे हमारे शत्रुओं के बीच जन्म नही लेंगें? चूँकि हम अपने पूर्व और आगामी जन्मों के बारे में अनजान हैं अतः हमें ऐसा लगता है कि आज जो हमारे शत्रु हैं वे अपने विद्वेष में रूढ़ हैं अथवा आज हमारे मित्र हैं वे सदा हमारे साथ मित्रता बनाए रखेंगें। इससे केवल हमें यह संकेत मिलता है कि हमने इस प्रश्न पर कभी ध्यान नहीं दिया है।

यदि हम इस पर ध्यानपूर्वक विचार करें तो हम एक ऐसी परिस्थिति की कल्पना कर सकते हैं जहाँ पर कई लोग एक विशाल परियोजना पर काम कर रहे हैं। एक समय के लिए वे सभी साथ साथ रहते हुए,आपस में घनिष्ठता बनाए, आपसी विश्वास रखते हुए और एक दूसरे की सहायता करते हुए मित्र हैं। पर स्वार्थ के चलते कुछ ऐसा होता है कि वे शत्रु बन जाते हैं यहाँ तक कि वे एक दूसरे को चोट पहुँचाते हैं और एक दूसरे की हत्या भी कर देते हैं। ऐसी घटनाएँ घटती रहती हैं अर्थात जीवन के दौरान इस प्रकार के परिवर्तन कई बार होते हैं – किसी और कारण से नहीं बल्कि इसलिए कि सभी संस्कृत वस्तुएँ या परिस्थितियाँ अनित्य होती हैं।

यह बहुमूल्य मानव शरीर यद्यपि निर्वाण प्राप्त करने का सर्वोत्तम उपकरण है पर यह स्वयं अपने आप में अनित्य पदार्थ है। कोई नहीं जानता कि कब और कैसे मृत्यु आएगी। पानी की सतह पर बुलबुले बनते हैं पर अगले ही क्षण वे गायब हो जाते हैं : वे बने नहीं रहतें। ऐसा ही इस बहुमूल्य मानव शरीर के साथ होता

है जो हमने प्राप्त किया है। अभ्यास में प्रवृत्त होने से पहले हम बहुत नष्ट कर देते हैं, पर कौन जानता है कि हमारे इस जीवन का अंत कब हो जाएगा? ओर एक बार हमारा बहुमूल्य मानव शरीर खो जाए तो हमारी संतति (चित्त धारा) अपने अस्तित्व को बनाए रखती हुई शायद जानवरों के बीच जन्म लेगी अथवा किसी एक नरक में या देव लोक में जहाँ आध्यात्मिक विकास असंभव है। यहाँ तक कि स्वर्ग लोक की स्थिति भी जहाँ सब कुछ सहज और आरामदायक है पर निरंतर दुर्व्यसनिता और ध्यान भंग होने के कारण देव अस्तित्व की विशिष्टता भी,साधना के लिए अनुकूल नहीं है।

हमें बाहरी विश्व – धरती, पत्थर, पर्वत, चट्टान और उच्छृंग हमारी इंद्रियों की धारणा के अनुसार नित्य और स्थायी जान पड़ते हैं जैसे कि सुदृढ़ कांकरीट का बना घर जिसके बारे में हम सोचते हैं कि वह कई पीढ़ियों तक बना रहेगा। पर वास्तव में उसमें कुछ भी ठोस नहीं है यह और कुछ नहीं बल्कि सपनों का एक शहर है।

अतीत में जब बुद्ध जीवित थे और अनेक अर्हतों से घिरे हुए थे और जब उनकी शिक्षा फल फूल रही थी तो उनके हितकारियों ने उनके लिए कैसे भवन बनाएँ होगें! वह सब कुछ अस्थायी था, अब देखने के लिए एक खाली मैदान के अलावा कुछ भी शेष नहीं है। ठीक इसी तरह विक्रमशिला और नालंदा के विश्वविद्यालयो में सहस्त्रों पंडितों ने अपना समय विशाल मठवासियों को उपदेश देने में बिताया। सभी अनित्य हैं ! अब एक सन्यासी अथवा बुद्ध के उपदेशों का एक ग्रंथ भी वहाँ देखने को नहीं मिलता।

हाल ही के अतीत से एक और उदाहरण लें। चीनी साम्यवादियों के आने से पूर्व तिब्बत बर्फ का प्रदेश कहलाए जाने वाले क्षेत्र में कितने मठ थे। सम्ये और ट्रानड्रक में ल्हासा के समान कितने मंदिर और मठ थे? बुद्ध के काय,वाक् और चित्त की प्रतीक कितनी बहुमूल्य वस्तुएँ थीं? अब एक प्रतिमा भी शेष नहीं है। सम्ये का जो भी कुछ बचा है वह इस तंबू के आकार का है,। सब कुछ या तो लूटा,तोड़ा अथवा बिखरा दिया गया और सभी भव्य मूर्तियों को नष्ट कर दिया गया। यह सब कुछ हुआ है और यह अनित्यता की ओंर संकेत करता है।

उन सभी लामाओं की सोचिए जो कि भारत आकर बस गए थे जैसे ज्ञलवा करमापा, लामा कालू रिनपोछे और ख्यब्जे दूजोम रिनपोछे; उन्होंने जो भी शिक्षा दी और किस तरह बुद्ध के सिद्धांतों को सुरक्षित रखने में अपना सहयोग दिया उसके बारे में सोचो। सभी की मृत्यु हो चुकी है। हम उन्हें देख नहीं सकते और वे केवल प्रार्थना और भक्ति की वस्तु बनकर रह गए हैं। यह सब कुछ अनित्यता के कारण है। ठीक इसी तरह हमें अपने पिताओं, माताओं, बच्चों और मित्रों के विषय में सोचने का प्रयास करना चाहिए। जब तिब्बती लोग भारत में शरणार्थी

बनकर आए तो उनके लिए हालात इतने कठिन थे कि कइयों की मृत्यु हो गयी। मेरी जान पहचान के लोगो में से ही प्रत्येक दिन करीब तीन और चार लोगों की मृत्यु हो जाती थी। वह अनित्यता है। अस्तित्व में कोई एक भी वस्तु ऐसी नहीं है जो कि स्थिर और स्थायी हो।

यदि हम अनित्यता की समझ रखते हैं तो हम पवित्र शिक्षा का अभ्यास कर सकते हैं। पर यदि हम ऐसा ही सोचते रहें कि सब कुछ वैसा का वैसा ही रहेगा तो हम केवल उन धनवान व्यक्तियों की तरह होंगें जो कि अपनी मरण शैय्या पर भी अपनी योजना की चर्चा करते रहते हैं ! ऐसे लोग कभी अपने अगले जन्म की बात नहीं करते, क्या कभी करते हैं? यह केवल इस बात को इंगित करता है कि मृत्यु की निश्चितता ने कभी उनके ह्रदय को छुआ नहीं है। वही उनकी ग़लती है, उनकी भ्रांति है।

उनकी भ्रांति क्या है? हम उसे किस तरह परिभाषित करें? यह ठीक उसी तरह है जब कोई पागल आदमी एक ठंड की ठिठुरते दिन में नहाने के लिए पानी में कूद पड़ता है, वह इतना पागल है कि यह नहीं अनुभव करता कि उसका शरीर बर्फ बनता जा रहा है। हम सोचते हैं कि वह आदमी पागल है पर ठीक इसी तरह जब स्वस्थ चित्त और अभ्रांत बोधिसत्व हमारी ओर देखता है तो हमारे काम उसे उतने ही विक्षिप्त जान पड़ते हैं जितने कि उस पागल के ! हमें इस बात का पूरा निश्चय होना चाहिए कि हम पूरी तरह भ्रांत हैं और हमें वस्तुएँ जिस रूप में अपने चित्त से अलग दिखाई देती हैं वे अपने आप में किंचित भी सत्यता नहीं रखतीं।

पर वह क्या है जो यह भ्रांति उत्पन्न करता है? यह चित्त है जो उन्हें वास्तविक मानता है जो कि भ्रांतिपूर्ण और अस्तित्वहीन हैं। परन्तु हमें स्पष्ट रूप से समझना चाहिए कि इस प्रकार की भ्रांति चित्त बुद्ध स्वभाव अथवा सुगतगर्भ चित्त से बिलकुल भिन्न है, अतः हमारे लिए इसे दूर करना असंभव नहीं है।

पर भ्रांति को जन्म देने वाला यह चित्त है क्या? चित्त का क्या अपना अस्तित्व है? इसे समझने के लिए

सचेतन के अजन्मे प्रकृति का विश्लेषण करो

जिसे हम चित्त समझते हैं उसमें जब क्रोध उत्पन्न होता है तो हम उन खतरों को भी विस्मृत कर देते है जो हमे जोखिम में डाल सकते हैं। क्रोध से लाल पीले होकर, हथियार उठाकर हम कई लोगों की हत्या भी कर सकते हैं। पर यह क्रोध एक भ्रांति है, वह ऐसी कोई प्रबल शक्ति नहीं जो कि एक आवेग से हमारे

अंदर आती है। उसकी उपलब्धि मात्र इतनी है कि वह हमें नरक में भेजती है, पर फिर भी यह और कुछ नहीं मात्र विचार है, सारहीन विचार। यह मात्र विचार है किंतु फिर भी ———————

एक और उदाहरण लें, एक अमीर व्यक्ति का। वह धनवान और सुखी है और यह सोचते हुए कि 'मैं धनवान हूँ' अपने आप में बहुत खुश है। यदि उसकी सब संपत्ति किसी अधिकारी या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा छीन ली जाए तो वह उदासी और दुःख से घिर जाता है। वह आनंद चित्त की एक अवस्था है है। वह उदासी भी एक अवस्था चित्त है। और वह चित्त लक्षण है।

इस विचारवान चित्त के विषय में हम क्या कहें? इस क्षण जब मैं धर्म की शिक्षा दे रहा हूँ, अपने मानसिक अनुभव अथवा विचार जो मुझे ध्यान से सुनते हुए आपके मन में हैं उसके बारे में विचार करें। क्या इसका कोई आकार या रंग है? क्या यह शरीर के ऊपरी अथवा निचले भाग में है, ऑखों अथवा कानो में है? जिसे हम चित्त कहकर पुकारते हैं वह वहॉ पर है ही नहीं। यदि यह सच में कुछ होता तो उसकी कुछ विशेषता होती जैसे रंग। उसे सफेद, पीला इत्यादि होना चाहिए अथवा उसका खंभे अथवा कलश जैसा आकार होना चाहिए। उसे बड़ा अथवा छोटा, वृद्ध अथवा जवान होना चाहिए आदि आदि। केवल अंदर झांककर और ध्यान से सोचकर ही आप जान सकते हैं कि चित्त का अस्तित्व है अथवा नहीं। आप देखेंगें कि चित्त का न प्रारंभ और न अंत और वह कहीं नहीं रहता है, उसका कोई रंग अथवा आकार नहीं होता और वह शरीर के अंदर अथवा बाहर भी नहीं मिलता। जब आप यह देखते हैं कि वह किसी *वस्तु* के रूप में नहीं होता तो उसे बिना कोई लेबल दिए अथवा पारिभाषित किए आपको उसी अनुभव में रहना चाहिए।

जब आपने इस शून्यता का अनुभव सच में कर लिया तो आप पूजनीय मिलारेपा अथवा गुरु रिनपोछे के समान होंगें जो कि ग्रीष्म की गर्मी और शीत काल की ठंड से अप्रभावित रहते थे और जिन्हें अग्नि से जलाया नहीं जा सकता था और न ही जल में डुबाया जा सकता था। शून्यता में न ही पीड़ा होती है और न ही दुःख होता है। दूसरी ओर हम चित्त की शून्य प्रकृति को समझ नहीं पाए हैं और इसलिए एक छोटे से छोटे कीड़े के काटने पर भी हम सोचते हैं,' आह मुझे कीड़े ने काटा है और मुझे पीड़ा हो रही है ; अथवा जब कोई कुछ कठोर बात कहता है तो हम क्रोधित हो उठते हैं। यही संकेत है कि हमने चित्त की शून्य प्रकृति का अनुभव नहीं किया है।

जो भी हो यह मान भी लिया जाए कि हम शरीर और चित्त की शून्य प्रकृति को लेकर निश्चित हैं, तो यह निश्चय जिसे साधारणतया प्रतिकारक कहते हैं हमारे चित्त के अंदर उत्पन्न होता है; पर फिर भी यह कहा गया है कि

प्रतिपक्ष स्वयं ही अदृश्य हो जाएगा

लोग धार्मिक शिक्षा की मांग इसलिए करते हैं क्योंकि उन्हें डर है कि मृत्यु के बाद उनका क्या होगा? वे निश्चय करते हैं कि वे शरणागत हों, लामा से उपदेशो के लिए प्रार्थना करेंगें और अविचलित रूप से सैकड़ों हज़ारों साष्टांग, सैकड़ों हज़ारों मंडलों का अर्पण करेंगें, शरणागत के मंत्र जाप आदि की साधना पर ध्यान करेंगें। निस्संदेह यह सकारात्मक विचार हैं पर निस्वभाव विचार बहुत देर तक बने नहीं रहते। जब गुरु की उपस्थिति नहीं होती और कोई यह बताने वाला नही होता कि क्या करना है और क्या नहीं करना तो अधिकांश साधक भटक जाते हैं। जैसी कि कहावत है : वृद्ध योगियों की धनवान होने की चाह; और वृद्ध शिक्षकों के विवाह की चाह। यह केवल इस बात का संकेत करता है कि विचार अनित्य हैं और इसलिए हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि कोई भी विचार या प्रतिपक्ष – यहाँ तक कि शून्यता का ज्ञान भी – बिना द्रव्यसत होने से अपनी प्रकृति में शून्य है।

मार्ग की प्रकृति आलय में है

सभी मानसिक क्रियाओं से मुक्त होकर हम शून्यता में किस तरह रहें? हम यह कहते हुए इसका प्रारंभ करें कि सोचने वाले अहम की कोई वास्तविक स्थिति नहीं है। जो भी हो हमें किसी सच्चे और ठोस वस्तु की अनुभूति होती है जिसे हम *मैं* कह कर बुलाते हैं और जो पंचेद्रियों की शक्ति और आठ चेतनाओं वाले इस शरीर के आलंबन से पाती है। यह सब तकनीकी शब्द हैं और बड़ी सरलता से समझ नहीं आते। पर उदाहरण के लिए जब ऑख किसी स्वरूप का बोध करती है तो चक्षु विज्ञान के कारण दृष्टि होती है। यदि स्वरूप सुंदर है तो हम सोचते हैं कि, 'यह अच्छा है और मुझे पसंद है।' यदि हम कुछ भयानक देखते हैं,उदाहरण के लिए कोई भूत अथवा कोई जो कि बंदूक लिए हमें मारने को उद्यत है तो हम सोचते हैं कि हमें मार दिया जाएगा और हमारी प्रतिक्रिया संत्रस्त होती है। परन्तु सत्य यह है कि यह बाहरी घटनाएँ जो कि ऊपरी तौर से तो बाहर प्रतीत होती हैं पर वास्तविकता में यह यहाँ/अंदर ही हो रही हैं, वे हमारे चित्त से बनी गई हैं। क्योंकि आपका चित्त है तो वह सब है, आपका चित्त नही।तो वहाँ कुछ भी नहीं है।इसे ऐसे समझा जा सकता है।

जहाँ तक यह बात कि अब हमारा चित्त कहाँ पर स्थित है हम यह कह सकते हैं कि वह हमारे शरीर से संबद्धित है और इस संयोग से ही हममें वाक् की क्षमता है। एक तंबू जो कि बाजुओं से रस्सियों से खिंचा हो और जिसके बीचों बीच एक बल्ला हो एक ऐसा स्थान बन जाता है जिसमें हम रह सकते हैं। ठीक इसी तरह हमारा शरीर, वाक् और चित्त अस्थायी रूप से एक साथ रहते हैं। पर जब हमारी मृत्यु होती है और हमारा चित्त अंतरभव में प्रवेश

करता है, तो हमारा शरीर यहीं रह जाएगा और हमारी बोलने की क्षमता पूर्णतया समाप्त हो जाएगी। और हमारे चित्त के साथ भी वह संपत्ति जो हमने, माता पिता, रिश्तेदारों अथवा मित्रों द्वारा अपने इस जीवन काल में जो भी अर्जित किया गया था कुछ भी नहीं जाएगा। मात्र अपने द्वारा संचित कुशल और अकुशल कर्म परछाई की तरह साथ जाएगी।

मृत्यु के बाद जो शरीर पीछे छूट जाता है वह शव कहलाता है। चाहे वह हमारे माता पिता का शरीर हो अथवा हमारे गुरु के अवशेष, वह मात्र शव है। अब यद्यपि शवों की ऑखें होती हैं पर वे देख नहीं सकते; वे अपने कानों से सुन नहीं सकते और मुॅह से बोल नहीं सकते। हम उन्हें रेशमी कपड़ों में सजा कर सिंहासन पर बिठा कर उनका सम्मान कर सकते हैं; या जला कर अथवा पानी में फेंक कर उनके साथ कठोर व्यवहार कर सकते हैं। शवों के लिए सब बराबर है। वे चित्तविहीन हैं, पत्थरों के समान न ही सुखी हैं और न दुखी।

जब चित्त सकारात्मक होता है तो शरीर और वाक् जो कि चित्त के सेवक हैं भी निश्चित रूप से सकारात्मक बन जाता है पर हम अपने चित्त को किस प्रकार सकारात्मक करें? इस समय तो हम इस धारणा को लिए हुए हैं कि हमारा चित्त वास्तविक अस्तित्व लिए हुए हैं। जब कोई हमारी मदद करता है, तो हम सोचते हैं, 'उस व्यक्ति का व्यवहार मेरे प्रति इतना अच्छा रहा है। इसके बदले मुझे भी दयालु होना चाहिए और इस जीवन और आने वाले जीवनों मे उसे अपना मित्र बनाना चाहिए।' यह केवल इस बात का संकेत देता है कि हम चित्त की शून्य प्रकृति के बारे मे नहीं जानते। जहॉ तक हमारे शत्रुओं का प्रश्न है, हम जितना हो सके उन्हें हानि पहुॅचाने की, हो सके तो जान से मारने की नहीं तो कम से कम उनकी सभी वस्तुओं को चुराने की सोचते हैं। हमारा चिंतन इस प्रकार का होता है क्योंकि हम सोचते हैं कि हमारा कोध एक सच्चा और स्थायी सत्य है – जबकि सच यह है कि वह कुछ है ही नहीं। इसलिए हमें चित्त की शून्य प्रकृति जो कि सभी मानसिक गढ़ंत के परे है, वह स्थिति जो कि सभी ग्राह्यता से स्वतंत्र है एवं सभी धारणाओं से परे है का आश्रय लेना चाहिए।

इस परमार्थ बोधिचित्त की स्थापना के लिए मूल ग्रंथ में कहा गाया है:

ध्यानोपरांत सभी पदार्थों को भ्रांति मानो

यह कहा जाता है कि जब कोई ध्यान से उठता है, सभी पदार्थ, स्वयं और अन्य, ब्रम्हांड और उसके निवासी सभी माया के समान प्रतीत होते हैं। परन्तु इसे उचित रूप से समझा जाना चाहिए।

जब महान बोधिसत्व सत्वों की भलाई और उन्हें निर्वाण के मार्ग पर प्रतिस्थापित करने के लिए इस संसार में आते हैं तो वे अपने कर्मों की शक्ति अथवा क्लेशों के कारण नहीं आते। जैसे कि हमने उनके पूर्व जन्मों के विषय में पढ़ा था

भगवान बुद्ध जबकि वे बोधिसत्व ही थे, उन्होंने पक्षियों, हिरणों आदि के रूप में जन्म लिया ताकि वे उन्हें उपदेश देकर सद्गुणों के मार्ग पर स्थापित कर सकें। उन्होंने एक सार्वभौमिक शासक के रूप में भी जन्म लिया था जिन्होंने महान उदारता का अभ्यास किया ओर बाद में धर्म की अपनी खोज में उपदेशो की मात्र कुछ पंक्तियों को सुनने के लिए वे अपनी देह जला देते, अथवा अपने जीवन की चिंता किए बिना अग्नि या जल में कूद जाते। चूँकि उन्होंने शून्यता का अनुभव कर लिया था इसलिए उन्हें किसी भी प्रकार के दुःख का अनुभव नहीं हुआ। पर जब तक हम उस स्तर की अनुभूति नहीं करते और जब तक हम इस विचार से चिपके रहते हैं कि सब कुछ स्थायी और स्थिर है तो हमारे लिए ऐसा नहीं होता। अपने दैनिक जीवन में कार्य रत रहते हुए हमें यह ध्यान में रखना चाहिए।

सांवृतिक बोधिचित्त

हम सांवृतिक बोधिचित्त की साधना को पहले ध्यान के रूप में देखेंगें और उसके बाद दैनिक जीवन के संदर्भ में।

ध्यान के संदर्भ में मूल ग्रंथ में कहा गया है कि हमें

एक के बाद एक देने और लेने का प्रशिक्षण लो

यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण अभ्यास है। जैसे कि महान आचार्य शांतिदेव ने कहा है –

'बनना जो चाहे शीघ्र ही शरण
स्वयं तथा अन्यों के लिए
उसे करनी होगी यात्रा इस पावन रहस्य की
अपना स्थान देकर दूसरों का स्थान लेकर

हम उसे अत्यधिक महत्व देते हैं जिसे हम ***मैं,*** मेरा मानते हैं और इसलिए ऐसे विचारो को भी कि मेरा शरीर,, मेरा चित्त मेरे पिता, मेरी माँ, मेरा भाई मेरी बहन, मेरा मित्र। पर हम दूसरों की धारणा का तिरस्कार और उपेक्षा करते हैं। निश्चय ही हम भिखारियों के प्रति उदार हो सकते हैं ओर जिन्हें आवश्यक हो उन्हें भोजन दे सकते हैं, पर यह एक तथ्य है कि हम उनकी ओर इतना ध्यान नहीं देते जितना ध्यान हम अपनी ओर देते हैं। हमें ठीक यही करना चाहिए पर बिलकुल इसके विरुद्ध, दूसरों के स्थान पर अपने को रख कर और अपनी जगह दूसरों का रखकर जिस तरह हम अब दूसरों की उपेक्षा करते हैं हमें अपने आप की भी उपेक्षा करनी चाहिए। इसी तरह बोधिचित्त विकसित होना प्रारंभ करता है, यही बोधिसत्वों का अनोखा रहस्यपूर्ण सार उपदेश है। इस क्षण यह

बोधिचित्त मुझमें जाग्रत नहीं हुआ है और इसलिए मेरे लिए यह अत्यंत ही सौभाग्यपूर्ण है कि मैं इस ग्रंथ के आधार पर समझा सकता हूँ।

यदि सप्त बिंदु चित्त प्रशिक्षण के श्रवण से हमें इस बात की पहचान हो जाती है कि बोधिचित्त कितना महत्वपूर्ण है तो यह हमारे निर्वाण का अचूक कारण होगा। चौरासी हज़ार अलग अलग धर्म ग्रंथों में बोधिचित्त बहुमूल्य सार तत्व है। इस प्रकार की शिक्षा के शब्दों को सुनकर दानव भी जिनकी प्रकृति ही मारने और हानि पहुँचाने की होती है,सकारात्मक विचारो को पैदा कर सकती है ! पूर्वी तिब्बत का खम प्रदेश पुराने समय में कई भूतों और दुरात्माओं से पीडित था और यही एक कारण था कि पलटुल रिनपोछे अपने अनुयायियों को निरंतर बोधिचर्यावतार समझाया करते थे। थोड़े ही समय में वहाँ कोई भूत न बचे – या कम से कम किसी को कोई हानि न पहुँची। यही बोधिचित्त की छिपी शक्ति है!

यदि मैं न दूँ अपना
सुख, दूसरो के दुःख के लिए
तो कभी प्राप्त नहीं होगा बुद्धत्व
और संसार में भी आनंद भागेगें मुझसे कोसों दूर

हमें निर्वाण उस समय प्राप्त होंगा जब हम दूसरों के प्रति ध्यान देगें जिस तरह हम अपनी ओर ध्यान देते हैं और अपनी उतनी ही उपेक्षा करें जितनी कि हम दूसरों की उपेक्षा करते हैं। यदि हमें संसार मे रहना भी पड़े तो भी हमें दुःख से मुक्त रहना चाहिए। क्योंकि जैसा मैंने कहा जब महान बोधिसत्वों ने अपने सर और अंग दे दिए तो उनके खोने में उन्हें किसी प्रकार का दुःख न हुआ।

अपने पूर्वजन्मों के किसी एक जन्म में बुद्ध एक सार्वभौमिक नरेश थे जिनकी आदत बिना किसी पश्चाताप के अपनी संपत्ति दे देने की थी। जो भी उनसे भीख मॉगने आता था उन्होने उसे कभी अस्वीकार नहीं किया और उनकी ख्याति कोने कोने में फैल गयी। एक दिन एक दुष्ट ब्राह्मण भिखारी उसके सामने आया और इस तरह संबोधित किया, 'महान राजा मैं दिखने में बहुत कुरूप हूँ, जबकि तुम अत्यंत सुंदर हो ; कृपा कर मुझे अपना सर दे दों। 'और राजा मान गया। अब उसकी रानियॉ और मंत्री को यह भय था कि वह इस प्रकार कर बैठेगें इसलिए सोने, चॉदी और जड़ाऊ पत्थर से बने सैकड़ों सिर बना कर उन्होंने भिखारी के सामने रखे।

उन्होंने प्रार्थना की, 'इन सिरों को ले जाओ, राजा से उसका सिर न मॉगों।

'जवाहरात से बने सिरों का मेरे लिए कोई प्रयोजन नहीं', भिखारी ने उत्तर दिया। मुझे मनुष्य का सिर चाहिए' और उसने उन्हें लेने से इनकार कर दिया। अंततः राजा से मिलने से वे उसे न विचलित कर सके।

राजा ने उससे कहा,' मेरे पुत्र और पुत्रियॉ रानियॉ ओर राज्य हैं, पर मेरे मन में उनमें से किसी के लिए भी कोई मोह नहीं हैं।। मैं तुम्हें अपना सर बगीचे में ज़ंबक वृक्ष के तले दूँगां। यदि आज मैं अपना सर तुम्हें दे देता हूँ तो मैं अपना सर देने का बोधिसत्व कार्य हज़ारवें बार पूरा कर चुका हूँगां। और इस तरह वृक्ष के तले राजा ने अपने कपड़े उतारे, अपने बालों को एक शाखा से बॉधा और अपना सिर काट दिया। उस क्षण धरती पर अंधकार छा गया ओर आकाश से देवताओ के रोने और विलापने की आवाज़ इतने जीर से आई कि मनुष्यों ने भी उसे सुनी। रानियॉ, राजकुमार और मंत्री सभी अवाक होकर ज़मीन पर गिर पड़े। तब देवताओं के राजा इंद्र प्रकट हुए और बोले, 'हे राजन तुम एक बोधिसत्व हो और अपना सिर दे चुके हो पर यहॉ मेरे पास देवताओं का जीवन देने वाला अमृत है। मुझे उसका लेप लगाकर तुम्हें पुनर्जीवित करने दो।'
अब वह राजा वास्तव में बोधिसत्व था और यद्यपि उसका सिर काटकर भेज दिया गया था पर उसका चित्त अभी भी वहीं था और उसने उत्तर दिया उसे इंद्र के जीवन दायिनी अमृत की कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि वह स्वयं ही अपनी प्रार्थना के बल पर अपने सर को वापिस ला सकता था।
इंद्र ने उसे ऐसा करने की प्रार्थना की और राजा ने कहा, 'यदि ज़ंबक वृक्ष तले मेरे सिर को देने के उन हज़ारों कार्यों के पीछे कोई और उद्देश्य नहीं,केवल परहित ही प्रयोजन था,आत्म ग्राह्यता से निष्कलंक, यदि मैं बिना किसी मनोमालिन्य के अथवा पछतावे के रहा हूँ तो मेरा सर पुनः जुड़ जाए। पर यदि कोई पछतावा अथवा बुरे विचार रहे हों अथवा विशुद्ध रूप से केवल दूसरों के लिए उद्देश्य न रहा हो तो मेरा सर कटा हुआ ही रहे। 'जैसे ही राजा ने यह कहा उसके कंधों पर पहले सर के समान जो ब्राह्मण ने लिया था एक और सर प्रकट हुआ। फिर रानियों, राजकुमारों, और मंत्रियों ने आनंद मनाया और धर्म के अनुसार राजपालन किया।

जो लोग इस तरह की उदारता का अभ्यास कर सकते हैं,उनके लिए कोई दुःख नहीं है। प्रबुद्ध गुरु, बोधिसत्व इस संसार में सत्वों के कल्याण के लिए आते हैं और यदि वे कामनाओं, क्रोध और अज्ञान की जकड़ में आए हुए लोगों से उपेक्षित भी होते हैं और जो रोड़ों और कठिनाइयॉ उनके समक्ष लाते हैं पर उनके मन में कार्य को छोड़ने का विचार कभी नहीं आता और वे बिना किसी क्रोध अथवा मनोमालिन्य के होते हैं। जैसा कि कहा गया है

स्वयं को हानि से बचाने के लिए
और अन्य को उनके दुःख से
अपने को दूसरों के लिए समर्पित कर दो
और अन्यों को सुरक्षा दो जैसे तुम स्वयं को सुरक्षित रखते हो

अब अपने सुख को दूसरों को देने का प्रशिक्षण लेते समय प्रारंभ से ही सभी सत्वों को देना बुद्धिमानी न होगी। क्योंकि सत्व अनगिनत हैं और आपका ध्यान स्थिर नहीं होगा,परिणामतः आपको अपने अभ्यास से कोई लाभ नहीं मिलेगा। इसलिए अपने सामने एक विशिष्ट व्यक्ति की भावना करो, ऐसा कोई जिससे तुम प्रेम करते हो, उदाहरण के लिए तुम्हारी मॉ। चिंतन करो कि जब तुम बहुत छोटे थे, तो अपने गर्भ में धारण करते हुए उसे कष्ट हुआ था, वह आराम से काम नहीं कर सकती थी अथवा खा नहीं सकती थी, बिना कठिनाई के खड़े अथवा बैठ भी नहीं सकती थी। परन्तु हर समय वह तुम्हें प्रेम करती रही या ध्यान देती रही। जब तुम उसके गर्भ से पैदा हुए थे तो इस तथ्य के अलावा कि तुम वास्तव में सॉस ले रहे थे, तुम्हें बड़ी मुश्किल से जीवित प्राणी कहा जा सकता था। तुममें अपने सर को उठाने के लिए भी पर्याप्त शक्ति नहीं थी। पर फिर भी तुम्हारी मॉ ने इस नन्हीं सी चीज़ को जिसे वह जानती भी नहीं थी को साफ करने के लिए और स्नेह से पालन पोषण करने के लिए उठाया। बाद में तुम्हारे बुरे आचरण के कारण उसने हानि व अपमान भी झेलना पड़ा पर उसकी मात्र एक ही चिंता रही कि तुम्हें किस प्रकार जीवित रखा जाए। यदि तुम्हारे माता पिता साधक थे तो तुम्हारे बड़े होने पर उन्होंने तुम्हें धर्म से तथा लामाओं से परिचित कराया जिनसे तुम्हें शिक्षा मिली।

वास्तव में तुम्हारी मॉ के कारण ही तुम्हारे बहुमूल्य मानव जीवन का अस्तित्व है। यदि वह न होती तो कौन जानता है कि तुम्हें यह मिलता भी कि नहीं। इसलिए तुम्हें उसके प्रति अत्यंत कृतज्ञ होना चाहिए। केवल इसी संदर्भ में नहीं बल्कि अनगिनत जन्मों के विषय में समझो कि सभी सत्व तुम्हारी मॉ रहीं हैं और उन्होंने तुम पर उतना ही ध्यान दिया है जितना कि तुम्हारी आज की मॉ कर रही हैं। जब तुम्हारी मॉ तुम्हारी ओर देखती हैं तो उनके माथे पर शिकन नहीं होती बल्कि वे स्नेह भरी दृष्टि से तुम्हारी ओर देखती हैं। तुम्हें अपना प्रिय बच्चा कहते हुए गर्मी सर्दी इत्यादि से बचाते हुए उसने तुम्हारा पालन पोषण किया है। हर रूप में उसने तुम्हें खुश करने की कोशिश की है। चाहे वह तुम्हें इस संपूर्ण सृष्टि का शासन दें दे पर वह फिर भी संतुष्ट नहीं होगी और उसे कभी भी ऐसा नही लगेगा कि उसने तुम्हें पर्याप्त दिया है। इसलिए तुम्हारी मॉ वह हैं जिनके प्रति तुम्हारे मन में अनंत कृतज्ञता का भाव होना चाहिए।

पर यदि बड़े होने पर कोई अपने बूढ़े और बीमार मॉ की देख रेख करने के बजाय उन्हें त्याग देता है तो लोग उसे लज्जाहीन कृतघ्न मानते हैं और यह उचित भी है। पर यदि हम ऐसे नहीं भी हों तो यह कहना बेतुका होगा कि हम अपने माता पिता का सम्मान करते हैं जबकि हम केवल अपनी ही चिंता करते हैं। दूसरी ओर यदि हम उनकी देखभाल करते हैं पर उन्हें केवल भौतिक

वस्तुएँ देते हैं जैसे कि खाना, कपड़ा यहाँ तक कि एक पूरे देश की संपत्ति दे दें तो उससे उन्हें कुछ देर के लिए ही लाभ हो सकता है। इसके विपरीत यदि हम उनका परिचय धर्म से करवाएँ जिससे वे संसार के पीड़ाजनक यथार्थ को समझ सकें और उसका अभ्यास करने लगें उदाहरण के लिए चेनेरेज़िग अवलोकितेश्वर पर ध्यान, तो हम उनके भविष्य के जन्मों के लिए भी सहायक होंगें। हमें बार बार अपने माता पिता सत्वों की भलाई के लिए कार्य करना चाहिए। अपने लिए सुख की कामना करते हुए वे बेचारे वे संसार की विभिन्न अवस्थाओं में भटकते रहते हैं। हम भी उन्हीं की तरह उन्हीं कारणों से संसार में भटक रहे हैं। इसलिए अभी इसी क्षण हमें उनके प्रत्युपकार के लिए सुदृढ़ निश्चय करना चाहिए और उनके दु:ख को दूर करने के लिए कार्य करना चाहिए।

सत्व दु:ख से उत्पीड़ित रहते हैं। प्रेत लोकों में अत्यधिक गर्मी और ठंड भूख और प्यास होती हैं। जानवर बंदी बनाए जाने के कारण दुखी होते हैं जबकि मनुष्य जन्म, बीमारी, बुढ़ापे और मृत्यु से यंत्रणा पाते हैं। असुर आपस में निरंतर लड़ते रहते हैं और देवता भी दुखी होते हैं जब उन्हें अपना स्वर्ग लोक छोड़ना पड़ता है।

सभी दु:ख दुष्कर्मों के परिणाम हैं जबकि सद्‌कर्म सुख और आनंद के कारण हैं। आलय में बचे नकारात्मकता के बीज रुक्के के समान हैं जो कि एक धनवान व्यक्ति से पैसे उधार लेते समय बनाए जाते हैं। कई वर्षों के बाद भी जब यह व्यक्ति रुक्का दिखाता है तो किसी सूरत में भी ऋण लेने वाला उधार वापिस करने से बच नहीं सकता। यह वैसा ही है जब हम सकारात्मक और नकारात्मक कर्मों को जमा करते हैं ; परिणाम शायद तत्काल ही नज़र न आए जैसे कि कोई हमें चाकू से काट दे ; पर जो भी हो हमारे प्रत्येक कर्मों के प्रभाव को हमें समाप्त करना होगा या तो हमारे कार्यों के शुद्धीकरण और स्वीकृति से अथवा उनके परिणामों के अनुभव से। वे समय के चलते ग़ायब नहीं हो जाते। यही दु:ख के दो सत्यों का और दु:ख के उद्‌भव का अर्थ है।दु:ख वह हानि है जिसका हम वास्तव में अनुभव करते हैं : नरक का ताप और शीत, भूखी आत्माओं के लोक की क्षुधा और तृष्णा आदि आदि। उद्‌भव दु:ख का बीज है,बैंक अधिकारी के लिए रुक्का,जो हमें इस समय नहीं पर भविष्य में अवश्य प्रभावित करेगा।

हमें सभी सत्वों के (जो पूर्व जन्मों में हमारी माँ रहीं हैं) दु:ख और उनके दु:ख के हेतुओं को अपने पर लेने का और साथ ही हमारे सुख के जो भी हेतु रहे हैं उन्हें देने का निश्चय करना चाहिए।यदि ऐसा करते अर्थात जब हम उनके दु:खों को अपने ह्रदय में प्रवेश पर ध्यान देते हैं तो हम पीड़ित होने लगते हैं तो हमें

आनंदित होकर यह सोचना चाहिए कि यह सब कुछ हमारी मॉ के लिए है। उनके लाभ के लिए अपना सुख और सकारात्मक कार्य देकर हमें अपने लाभ की उपेक्षा करनी चाहिए यहॉ तक कि हम अपना जीवन भी उनके लिए देने हेतु तत्पर रहें। हमें उन्हें ऐसी परिस्थिति देने के लिए प्रयास करना चाहिए कि हमारे मॉ सत्वों को यहॉ और अभी सुख और धर्म के अभ्यास के लिए अनुकूल परिस्थिति मिले। हमें उनके शीघ्र निर्वाण की प्रार्थना करना चाहिए और वे जितनी भी उन्नति करें उसमें आनंद लेना चाहिए।

यदि हम .लगातार अपने माता पिता के विषय में ऐसा सोचते रहें तो अंततः हम स्वयं से अधिक उनकी देखभाल कर पाएँगें और उसी तरह अपने भाई,बहनों मित्रों ओर प्रेमियो की। तत्पश्चात हमें अपने दश्ृष्टकोण को व्यापक बनाकर नगर के सभी लोगों को शामिल कर और उसके बाद पूरे देश के लोगों को शामिल करना चाहिए। जब हम उसके आदी हो जाते हैं तो हम सभी सत्वों को शामिल करने का प्रयास कर सकते हैं। यदि हम इसे कमशः करते रहें तो हमारे व्यवहार की व्यापकता बढ़ जाएगी, हमारी भावनाएँ स्थिर रूप से विकसित होंगीं और हमारा प्रेम और अधिक गहन हो जाएगा।

इस तरह अपने माता पिता से प्रारंभ कर हमें सभी सत्वों पर केन्द्रित होना चाहिए जिन्होंने अनगिनत जन्मों में हमारे इस जन्म के माता पिता की तरह हमारी देख भाल की है। हमें उनके प्रति एक गहन कृतज्ञता का अनुभव करना चाहिए। यह जानते हुए कि यह सभी मॉ पिता सत्व संसार में हर प्रकार के दुःख झेलते हैं हमें प्रबल करुणा से मात्र एक ही विचार का पोषण करना चाहिए : 'काश मैं उन्हें इस दुःख से मुक्त कर सकता।'

सारांश में : एक प्रबल करुणा के चित्त से हम यह कल्पना करते हैं कि सभी सत्वों के दुःख हममें घुल मिल जाएँ और बदले में हम अतीत,वर्तमान और भविष्य की अपनी काया, संपत्ति और सकारात्मक कार्य दें। और यदि हम देखते हैं कि सत्व सुखी हैं और उनके सकारात्मक कार्य बढ़ते हैं तो हमें बार बार आनंदित होना चाहिए।

सुख और दुख का आदान प्रदान का विचार बहुत ही सहजता से आएगा यदि हम निम्नलिखित मूल पद में मुख्य निर्देश का पालन करेंगें :

उन दोनों को अपनी श्वास पर धारण करो

अपने समक्ष उस व्यक्ति की भावना करो जिसे तुम सबसे अधिक नापसंद करते हो। जब तुम श्वास बाहर छोड़ते हो तो तुम्हारे सभी सुख सकारात्मक कार्य और संपत्ति तुमसे अलग हो जाते हैं जिस तरह हवा से कुहरा छँट जाता है। वह तुम्हारे शत्रु के अंदर घुल जाते है जो इस तरह दुःख से विमुक्त होकर आनंद से भर जाता है, इस तरह से प्रसन्न हो जाता है मानों उसने अमिताभ बुद्ध के

विशुद्ध क्षेत्र में जन्म लिया हो। जब तुम श्वास अंदर लेते हो उसके सभी दुःख, नकारात्मक कार्य और अज्ञान तुम्हारे अंदर उसी तरह उतरते हैं जिस तरह हवा पर धूल जमती है। यह कल्पना करते हुए कि उसके दुःख वास्तव में तुम पर गिर रहे हैं, उनके बोझ का अनुभव इस प्रकार करो मानो तुम कोई बोझ ढो रहे हों। अभ्यास से यह सरल हो जाएगा। एक लंबे समय तक कुछ महिनों, कुछ वर्षो तक इसी तरह ध्यान करते हुए तुम इसके आदी हो जाओगे और तुम्हारा अनुभव विकसित होगा,जो होना चाहिए।

पुराने ज़माने में खलहल टाशी ओलर का एक छात्र पर्वतों में एक सन्यासी जैसा रहता था। जब उनके परिवार के एक नौकर की मृत्यु हुई, 'तो उसने उसके लिए प्रार्थना की और एक दिन उसने स्वप्न देखा कि उनके नौकर ने एक गरम नरक में पुनर्जन्म लिया है। जब वह जागा तब वह सीधा खलहल टाशी ओलर के पास पहुॅचा जिनसे उसने स्वप्न दोहराया और उनसे उस मृत नौकर के बारे में सोचने व प्रार्थना करने के लिए कहा।

खलहल टाशी ओलर ने उत्तर दिया,'मैं उसके बारे मे सोचूॅगां पर तुम्हें भी उसे सुख भेजने और उसके दु'ख लेने की भावना का अभ्यास करना चाहिए। यदि तुम बार बार करोगे ती जिस व्यक्ति के बारे में तुमने मुझे बताया है वह नरक लोक से मुक्त हो जाएगा।'

अतः वह तपस्वी अपनी गुफा में लौट गया और लगातार भावना की साधना करने लगा। सात दिनों के बाद उसने देखा कि वह फफोलों से भर गया है। यह सोचकर कि यह कोई संकेत है वह फिर से खलहल टाशी ओलर के पास लौटा।

आपने मुझसे आदान प्रदान के अभ्यास के लिए कहा था, उसने अपने गुरु से कहा, 'और अब लगता है मानों मेरा शरीर अग्नि से जल रहा है। मैं फफोलो से भर गया हूँ'।

'यह केवल संकेत है', खलहल टाशी ओलर ने कहा, 'तुम्हारा पूर्व नौकर अब नरक से मुक्त हो चुका है और इससे यह भी दिखता है कि तुम सुख दे सकते हो और दुःख ले सकते हो।

यदि हमें इस अभ्यास से सच्चा लाभ मिल सकता है तो हमें इसमें लगे रहना चाहिए जब तक कि ऐसे संकेत उत्पन्न नहीं होते।

जब आज़ोम ड्रुगपा के शिष्यों ने आदान प्रदान अथवा तोंगलेन जैसा कि तिब्बती भाषा में कहा जाता है, की साधना करते विशेषकर उन व्यक्तियों के बारे में सोचते हुए जिन्होने कई बड़े नकारात्मक कार्य किए हैं। अकसर ऐसा होता था कि यदि उन्होंने पहले ध्यान में कुछ अनुभव प्राप्त किया होता तो उनकी समझ धुॅधली हो जाती और वे ऐसा अनुभव करते कि उनका अज्ञान बढ़ गया है। यदि

ऐसे संकेत दिखाई दे यद्यपि उन्हें इन संकेतों के रूप में नहीं लेना चाहिए कि हमारे लिए भविष्य में दुःख है। अपने पूरे जीवन में गेशे ख्रक गोमछुंग ने प्रार्थना की, 'मेरा जन्म नरक मे हो उन लोगों के स्थान पर हो जिन्होंने पाप पूर्ण कार्य किए हैं।' वह दिन रात इस प्रार्थना को दोहराता। पर अपनी मृत्यु के ठीक पहले उन्होंने कहा : 'मेरी प्रार्थना पूरी नहीं हुई है! क्योंकि ऐसा लग रहा है कि मैं अमिताभ बुद्ध क्षेत्र जा रहा हूँ; जहॉ भी मैं देखता हूँ मुझे पुष्पों से भरे उपवन और पुष्प वृष्टि दिखाई दे रही है। यद्यपि मैंने प्रार्थना की है कि सभी सत्व अमिताभ बुद्ध क्षेत्र जाएँ और उनके स्थान पर मैं नरक में जाऊँ पर वास्तव में ऐसा लगता है कि मै वहॉ नहीं जा रहा। तोंगलेन के यह परिणाम हैं।

ध्यानोपरांत सांवृतिक बोधिचित्त

त्रिपदार्थ, त्रिविष और त्रिशुभ के मूल

वह वस्तुएँ जो हमें अच्छी लगती हैं और वे व्यक्ति जिनसे हम प्रेम करते हैं उदाहरण के लिए हमारे माता पिता और रिश्तेदार तो हम मोह का अनुभव करते हैं। पर जब हमारा सामना अप्रिय परिस्थितियों से होता है, उदाहरण के लिए जब हम शत्रुओं को या जिन्हें हम पसंद नहीं करते उन्हें देखते हैं तो हम घृणा का अनुभव करते हैं। जब हम ऐसे लोगों को देखते हैं जो न तो अभिन्न मित्र हैं न ही शत्रु हैं हम उपेक्षा का अनुभव करते हैं। सुखद परिस्थितियों में हम मोह का; अरुचिकर परिस्थितियों में क्रोध और उपेक्षित परिस्थितियों में अज्ञान का अनुभव करते हैं।

कई व्यक्ति जैसे मैं, त्रिविष से पीड़ित हैं। इसलिए हमें प्रार्थना करनी चाहिए, 'इन त्रिविषों से जनित सभी सत्वों के अज्ञान मुझ पर वहन करने योग्य बोझ साथ आ जाएँ। सभी सत्व सकारात्मक कार्य करते हुए शुभ जीवन जीएँ और मोह, क्रोध और अज्ञान के त्रिविष से मुक्त हों।' यदि हम अपने आप को इस प्रकार के चिंतन के लिए निरंतर प्रशिक्षित करते रहें तो हमें इससे अतिशय लाभ होगा।

अपने सभी कर्मों में स्वयं को सूक्तियों से प्रशिक्षित करो

इन सूक्तियों का एक उदाहरण होगा : 'अन्य लोगों के दुष्कर्म मेरे दुख के रूप में परिपक्व हों; मेरे सभी सद्कर्म दूसरों के सुख के रूप में फलीभूत हों।' सभी कदम्पा गुरु सदा इसी का जाप करते थे। ध्यानोपरांत अवधि में इस प्रकार के पदों को दोहराना अच्छा होता है।एक अनमोल वस्तु जैसे ल्हासा के जोवो रिनपोछे के सामने अथवा लामा की उपस्थिति में इस प्रकार की प्रार्थना करना और भी अधिक लाभकर होगा। यदि हम इस प्रकार करें तो हमारे अंदर बोधिचित्त का विकास सुनिश्चित है और इसलिए हमें इस अभ्यास में अधिक समय और शक्ति लगानी चाहिए।

प्रशिक्षण का कम स्वयं से प्रारंभ करो

हमें इस प्रकार सोचना चाहिए भविष्य में निहित सभी प्रकार की यातनाएँ, नरक के ताप और शीत और भूखी आत्माओं की भूख और तृष्णा इसी समय मुझ पर आ जाएँ। और सभी कर्म, अज्ञान और क्लेश जिनसे सत्वों का एक नारकीय भाग्य में पतन होता है मेरे ह्रदय में समा जाएँ ताकि उनके स्थान पर मैं नरक में चला जाऊँ। जैसा कि शिक्षा कहती है दूसरों के दुःख उनकी इच्छाओं और अज्ञान का फल मुझे प्राप्त हों।' हमें बार बार अपने को इस तरह प्रशिक्षित करना चाहिए जब तक कि हमें मैत्रीयोगिन के समान संकेत नहीं मिल जाते जो कि उस स्थान पर घायल हुए थे जहाँ पर कुत्ते को पत्थर से चोट लगी थी।

बोधिचित्त, जो कि निर्वाण का चित्त है,सूत्र और मंत्रयान के सभी साधनाओं का केन्द्र है तथा इसको कार्यान्वित करना सहज है। यदि यह किसी व्यक्ति में है तो सब कुछ पूर्ण है और इसके बिना कुछ भी पूर्ण नहीं है। इस समय तुम्हें विभिन्न गुरुओं से चित्त प्रशिक्षण पर कई उपदेश मिल रहे हैं। इन्हें अपने ह्रदय में धारण कर लो ! जब इनका अनुवाद हो जाएगा तो मैं आशा करता हूँ कि तुम उन्हें समझ सकोगे और स्मरण कर सकोगे। क्योंकि निश्चित रूप में यही धर्म है।

III
विषम परिस्थितियों को निर्वाण मार्ग के साधन के रूप में परिवर्तित करना

बोधिचित्त को दो शीर्षकों के अंतर्गत समझा जा सकता है : प्रणिधान बोधिचित्त और प्रस्थान बोधिचित्त। प्रथम से प्रारंभ किया जाए तो हम देखते हैं कि इसके भी सांवृतिक सत्य और परमार्थ सत्य के आधार पर दो अंग बन जाते हैं।

जब संपूर्ण विश्व बुराइयों से भर जाए
तो सभी गतिरोधों को मुक्ति के मार्ग में परिवर्तित कर दो

यदि हमारे पास निर्देश अर्थात ज्ञान हों कि किस तरह बाधाओं को हम मार्ग के रूप में परिवर्तित करें तो चाहे कितनी ही कठिन या विरोधाभासी परिस्थितियॉ हमारे मार्ग में क्यों न आ जाएँ वे मात्र हमारे अभ्यास को स्पष्टीकरण करनी वालीं देंगीं और उनमें मार्ग को बाधित करने की कोई शक्ति न रहेगी। यदि हमारे पास ऐसे कोई निर्देश शिक्षा न हों तब कठिनाइयों का अनुभव बाधाओं के रूप में होगां।

ऐसे विकृत काषाय समय में जहॉ तक बाहरी विश्व का संबंध है,वर्षा और बर्फ अपने नियत समय पर नहीं पड़ती, फसल खराब है, पशु अस्वस्थ हैं और लोग तथा जानवर बीमारी से ग्रसित हैं। चूँकि लोग अपना समय दुष्कार्यों में बिताते हैं, ईर्ष्यालु हैं और निरंतर एक दूसरे के अहित की कामना करते हैं इसलिए कई देशो के बीच में मतभेद और नैराश्यजनक परिस्थिति है। हम ऐसे समय में हैं जब कि धर्म की शिक्षा भी विकृत हो चुकी है जिससे अकाल, रोग और युद्ध फैला हुआ है। पर जब किसी जंगल में आग लगी होती है तो एक झंझा उसे केवल बढ़ाता है ; वह उसका शमन नहीं करता। उसी तरह एक बोधिसत्व के लिए जिसे शिक्षा मिली है ऐसी सभी भयंकर स्थितियों को मार्ग पर लाभकारी ढंग से लाया जा सकता है।

गुरु पद्संभव ने कहा है, 'अरे विकृत समय के सत्वों जिन्हें दस दिशाओं के बुद्धों और बोधिसत्वों से मिलने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है, मुझसे प्रार्थना करो। मेरी करुणा तत्काल ही तुम्हारा कवच बन जाएगी। 'इस को समझने के लिए तिब्बत की सोचो, ऐसा स्थान जहॉ बुद्ध शाक्य मुनि कभी नही

गए। जब मठाधीश, वज्रपाणि बुद्ध धर्म की शिक्षा के लिए स्वयं वहाँ गए तो उनके कार्य को रौद्र और बुरी आत्माओं द्वारा बाधित किया गया। उस अमंगल परिस्थिति के कारण गुरु रिनपोछे को आमंत्रित किया गया। वे आए और शून्यता तथा करुणा के शस्त्रों से सभी नकारात्मक शक्तियों का शमन कर, समूचे देश को चेनेरेज़िग अवलोकितेश्वर के बुद्ध क्षेत्र के रूप में अनुमंत्रित किया जिससे महायान की परंपरा सूर्य के समान उदित हुई और चमकी। यह बोधिसत्व कार्यों का एक उदाहरण है।

पर हम ऐसा भी सोच सकते हैं कि सभी को निर्वाण के मार्ग पर लाने के लिए हमें भी गुरु रिनपोछे के समान उच्च अनुभूतियों और ऋद्धि आदि शक्तियों,गुणों की आवश्यकता है, जो हमारे पास नहीं है। हमें उस प्रकार के विचारों से स्वयं को हतोत्साहित नही करना चाहिए ! इन शिक्षाओं का पालन कर अपने आध्यात्मिक प्रशिक्षण में हम हर कठिन परिस्थिति को कुशल काम में ला पाएँगें।

सांवृतिक सत्य से संबधित बोधिचित्त

सभी दुःखों का कारण आत्म ग्राह्यता को एक शत्रु के रूप में न पहचानना है। जब हमें लकड़ी अथवा पत्थर से मारा जाता है तो हमें पीड़ा होती है; जब हमे कोई चोर अथवा झूठा कहकर बुलाता है हमें कोध आता है। ऐसा क्यों होता है? ऐसा इसलिए होता है क्योंकि जिसे हम अपना आत्मीय मानते हैं उसके प्रति हमारे मन में बहुत सम्मान और मोह होता है और हम सोचते हैं, 'मुझ पर आकमण हो रहा है' इस 'मैं' से चिपके रहना ही मुक्ति और निर्वाण की प्राप्ति में वास्तविक विघ्न है। जिन्हें हम विघ्न को जन्म देने वाला अथवा दुष्प्रभाव मानते हैं जैसे भूत, देवता इत्यादि वास्तव में हमसे बाहर अस्तित्व माने जाने वाली कोई वस्तु नहीं है। गड़बड़ हमारे अंदर से आता है। यह हमारे 'मैं ' में आसक्ति के कारण ही हम सोचते हैं : 'मैं इतना दुखी हूँ, मुझे खाने के लिए कुछ नहीं मिल रहा, मेरे पास कुछ कपड़े नहीं हैं; कई लोंग मेरे विरुद्ध हैं और मेरा कोई मित्र नहीं है'। इस प्रकार के विचार ही हमें बहुत व्याकुल रखते हैं और वह भी निरर्थक रूप में! यही कारण है कि हम मुक्ति और बुद्धत्व के मार्ग पर नहीं हैं। आदि से अब तक हमारी संपूर्ण जीवन की श्रृखंला में हमने छह लोकों में से किसी न किसी एक मे जन्म लिया है। आत्म ग्राह्यता के दास होकर हम कितने समय से संसार के तीन धातुओं अर्थात लोकों में गुलामी कर रहे हैं ! इसी कारण हम बच कर निकल नहीं पाते। यदि किसी आदमी ने बहुत धन उधार लिया है तो उसे तब तक एक क्षण की भी शांति नही मिलती जब तक वह उसे चुका नहीं देता और यही बात उन सभी कार्यों के साथ है जो हमारी आत्म

ग्राह्यता ने हमें करने के लिए दिया है, उसने रुक्के के समान आलय में नकारात्मक चिह्न छोड़े हैं। जब हमारे कर्म फलीभूत होते हैं और भुगतान की मॉग होती है तो हमारे लिए सुख और आनंद का कोई अवसर नहीं होता। इन सब का कारण जैसा कि शिक्षाओं में कहा गया है कि हम आत्म ग्राह्यता को अपने शत्रु के रूप में नहीं पहचानते।

इसका कारण यह भी है कि हम सत्वों की महा करुणा को भी नहीं पहचानते। बुद्ध शाक्यमुनि ने कहा कि सत्वों के लिए दया और करुणा से कार्य करना और बुद्धों के लिए चढ़ावा देना दोनों समान मूल्य के हैं। अतः दूसरों के प्रति उदार होकर, उन्हें दुःख से मुक्त कर विमुक्ति के मार्ग पर लाना बुद्धों के लिए चढ़ावा देने के समान हैं। हम ऐसा सोच सकते हैं कि मंदिर में देना अथवा बुद्ध की प्रतिमा के समक्ष चढावा रखना श्रेयस्कर है। वास्तव में चूँकि बुद्ध आत्म पुष्टि की भावना से पूर्ण मुक्त होते हैं, तो जितना अधिक हम सत्वों की सहायता करेंगें वे उतने अधिक प्रसन्न होंगें। मारों के गिरोह ने अपनी सेनाओं को भेजकर और उन पर शस्त्रों का वार करते हुए जब बुद्ध को रोकने का प्रयास किया जब वह निर्वाण प्राप्त करने के कगार पर थे तो उन्होने उनके प्रति दया पर ध्यान किया,तदनंतर उनकी महा करुणा और मैत्री उन सभी की घृणा पर छा गयी जिससे उनके शस्त्र पुष्प में परिवर्तित हो गए और उनकी निंदा और युद्ध नाद को प्रशंसा और मंत्रो में परिवर्तित कर दिया। वास्तव मे अन्य सत्व पुण्य संभार की प्राप्ति के श्रेष्ट अवसर हैं, विषय हैं, आलंबन हैं।

इसलिए सुखवती (एक विशुद्ध बुद्ध क्षेत्र जहॉ कोई क्लेशयुक्त सत्व और घृणा,अहंकार और ईर्ष्या की कोई वस्तु नहीं हैं) के बोधिसत्व हमारे इस दुःख भरे संसार में पुनर्जन्म की प्रार्थना करते हैं। सूत्र कहता है वे उस स्थान पर रहना चाहते हैं जहॉ सत्व केवल भौतिक वस्तुओं के संचय की बात सोचते हैं और जो उनके अंतरंग हैं उन्हें संतुष्ट करने का प्रयास करते हैं, और इसलिए जहॉ वे क्लेशों के अभिभूत हो जाते हैं अतः वे चित्त प्रशिक्षण और बोधिचित्ताभ्यास के आलंबन हैं। संबुद्धत्व की प्राप्ति के तात्कालिक हेतु अन्य सत्व ही हैं; अतः हमें वास्तव मे उनके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए।

सब के लिए एक को दोषी ठहराओ

सभी दुःख, सभी रोग, प्रेत प्रकोप, धन की हानि, कानून की उलझन इत्यादि निरपवाद 'मैं' की ग्राह्यता के कारण है। वहीं पर हमें अपनी सभी दुर्घटनाओं के लिए दोषारोपण करना चाहिए। हमारे सभी दुःखो का जन्म केवल हमारी चित्त ग्राह्यता के कारण ही है। हमें दूसरों पर किसी प्रकार का दोष नहीं मढ़ना चाहिए। चाहे फिर कोई शत्रु ही क्यों न आकर हमारा सर काट दे अथवा छड़ी

से हमें पीटे, वह मात्र चोट की क्षणिक परिस्थिति प्रदान करता है। हमारी हानि होने का वास्तविक कारण हमारी आत्म ग्राह्यता है।और यह हमारे शत्रु द्वारा प्रदत्त नहीं है। जैसा कि कहा गया है:

सभी हानि जिससे यह विश्व भरा हुआ है
सभी भय और दुःख जो यहाँ हैं
'मैं ' को धारण करने से हुआ है
इस महा मार का मैं क्या करूँ?

जब लोग ऐसा विश्वास करने लगते हैं कि उनका घर भुतहा हो गया है या कोई विशिष्ट वस्तु श्रापग्रसित है तो वे सोचने लगते हैं कि उन्हें झाड़ फूँक करवाने की आवश्यकता है। साधारण लोग अकसर ऐसे होते हैं, हैं न! पर भूत, शैतान इत्यादि केवल बाह्य शत्रु हैं; वे वास्तव में हमें हानि नहीं पहुँचा सकते। पर जैसे ही आत्म ग्राह्यता का आंतरिक भूत प्रकट होता है – तभी सच्ची गड़बड़ प्रारंभ होती है।

आत्म ग्राह्यता किसी भी समय अस्तित्व में नहीं रहा हैं। हम अपने 'मैं' से उस समय भी चिपके रहते हैं जबकि वास्तव में चिपकने के लिए कुछ नहीं होता। हम उससे चिपक कर उसे तुष्ट करते हैं। उसके लिए हम दूसरों का अहित करते हैं, कई नकारात्मक कार्यों का संभार करते हैं जिससे संसार में और बाद में निम्न लोको में कई दुःखों को झेलते हैं।
बोधिचर्यावतार में कहा गया है :

अप्रमेय गताः कल्पाः स्वार्थं जिज्ञासतस्तव।
श्रमेण महतानेन दुःखमेव त्वयार्जितम्।।

ध्यान पारमिता 155

अपने स्वार्थी चित्त को इस प्रकार समझाना चाहिए कि तुमने स्वार्थी होकर अपने स्वार्थ की इच्छा करते हुए कठोर श्रम के साथ असंख्य कल्प बिताए हें, परन्तु दुःख क सिवाय और कुछ प्राप्त नहीं हुआ।

किसी एक क्षण की ओर संकेत करना और कहना संभव नहीं है,' मैंने इस अनंत कल्पों तक संसार मे जन्म लिया ; और मैं इतने समय तक यहाँ रहा हूँ' बुद्ध के असीमित ज्ञान को जानने के अभाव में इस प्रकार के महा काल की गणना नहीं की जा सकती कि कितने समय से मैं संसार में चंक्रमण कर रहा हूँ।
चूँकि हम आत्म ग्राह्यता की भ्रांति में डूबे हैं हम केवल 'मेरा शरीर, मेरा चित्त, मेरा नाम ' के संदर्भ मे सोचते हैं। ' हमें लगता है कि हम उनके स्वामी हैं और

हम उनकी देख रेख करते हैं। जिस किसी से भी उन्हें हानि पहुॅचे हम उन पर आक्रमण करेंगें। जो भी उनका सहायक है हम उससे जुड़ जाएॅगें। इसलिए इससे जो भी दुर्घटनाएॅ अथवा क्षति होगी वह आत्म ग्राह्यता का कार्य कहलाएगा और चूॅकि यह दुःख का स्त्रोत है तो हम देख सकते हैं कि यह वास्तव मे हमारा दुश्मन है। हमारे चित्त ने जो कि आत्म की भ्रांति से चिपका हैं आदि काल से ही इस संसार में दुःख को जन्म दिया है। यह कैसे आता है? जब हम अपने से अधिक किसी धनवान व्यक्ति, किसी शिक्षित व्यक्ति और हमारी अपनी परिस्थिति से बेहतर परिस्थिति वाले व्यक्ति के संपर्क में आते हैं तो हम सोचते हैं कि वे दिखावा कर रहे हैं और हम उनसे बेहतर करने की ठान लेते हैं। हम ईर्ष्यालु होकर उनकी औकात कम करना चाहते हैं। जब वे व्यक्ति जो हमसे कम भाग्यशाली व्यक्ति हैं हमसे सहायता की याचना करते हैं तो हम सोचते हैं,' कि इस प्रकार के भिखारियों की सहायता करने का क्या लाभ? वह मेरे प्रत्युपकार में कभी कुछ न कर पाएगा। मैं इससे स्वयं को परेशान नहीं कर सकता।' जब हम कभी अपने ही सम स्तरीय किसी को पाते हैं जिसके पास कुछ धन है तो हमें भी उसकी इच्छा होती है। यदि वे ख्याति प्राप्त हैं तो हम भी प्रसिद्धि चाहते हैं। यदि उनकी परिस्थिति अच्छी है तो हम भी अच्छी परिस्थिति चाहते हैं। हम हमेशा प्रतिस्पर्धा चाहते हैं। इसलिए हम संसार से मुक्त नहीं हो सकते : यही है जो कि दुःख और पीड़ा का जन्म देती है जिनके बारे में हम यह कल्पना करते हैं कि उन आत्माओं और अन्य व्यक्तियों ने हमें यह पहुॅचाई है।

एक बार जब मिलारेपा देवों और असुरों से सताए जा रहे थे उन्होंने उनसे कहा: यदि तुम्हें मेरा शरीर खाना है, तो खा लो ! यदि तुम्हें मेरा रक्त पीना है तो पी लो! तत्काल ही मेरा जीवन और श्वास ले लो और जाओ!' जैसे ही उन्होंनें स्वयं की चिंता का परित्याग किया, सभी कठिनाइयॉ घुल गईं और बाधा डालने वालों ने उनके प्रति श्रद्धा व्यक्त की।

इसलिए बोधिचर्यावतार के रचयिता अहं के बारे में कहते हैं :

एवं चानेकथा दत्वा त्वयाहं व्यथितश्विरम्।
निहन्मि स्वार्थचेटं त्वां तानि वैराण्यनुस्मरन्।।

ध्यान पारमिता 172

तुम्हारे द्वारा इस तरह अनेक नरकपालों के हवाले किए जाने से मैंने अनादि काल से दुःख ही दुःख अनुभव किया है, परन्तु अब उन वैरो का स्मरण करते हुए तुम्हारे स्वार्थ तथा आत्मस्नेह की भावनाओं को समूल नष्ट कर दूॅगा।

हममें जिस हद तक आत्म ग्राह्यता होती है वही हमारे दुःख का माप है। इस संसार में यदि कोई व्यक्ति को अपने किसी परिचित द्वारा हानि पहुँचाई गयी हो तो वह सोचेगा,: मैं उस व्यक्ति के घोर अत्याचारों का शिकार हूँ। मुझे इसका जवाब देना होगा। उसे जान से मार देना चाहिए कम से कम अधिकारियों को उसे कारागार में डाल देना चाहिए, उससे पाई पाई वसूल करवाना चाहिए।' और यदि घायल व्यक्ति इन उद्देश्यों में सफल हो जाए तो उसे एक उत्तम, सीधा और साहसी व्यक्ति माना जाएगा। पर यह यदि हम इस आत्म ग्राह्यता को समाप्त करने की इच्छा रखें जिसने हमें आदि काल से केवल दुःख और हानि ही पहुँचाई है – तभी हम निर्वाण के मार्ग पर होंगें।

इसलिए जब 'मैं' के प्रति मोह जागता है – तो यह केवल हमारे चित्त का एक विचार मात्र है – ऐसा सोच हमें उसके खोज का प्रयास करना चाहिए। यह अहं क्या कोई वस्तु है? क्या यह अंदर है अथवा बाहर? जब हम सोचते हैं कि किसी ने हमें चोट पहुँचाने के लिए कुछ किया है और हममें कोध उत्पन्न होता है तो हमें अपने आप से पूछना चाहिए कि क्या कोध हमारे शत्रु द्वारा दिया गया है अथवा यह हमारे ही अंदर है। इसी तरह अपने मित्रो से मोह – क्या हमारी उत्कंठा हमारे मित्र के गुण हैं या कि यह हमारे अंदर है? और यदि कोई कोध अथवा मोह जैसी वस्तुएँ हैं तो क्या उनका कोई आकार अथवा रंग है, क्या वे पुरुष स्त्री अथवा इन दोनों में से कुछ भी नहीं हैं? क्योंकि अगर उनका अस्तित्व है तो उनकी विशिष्टताएँ होनीं चाहिए। पर तथ्य यह है कि यदि हम अपनी खोज बनाएँ भी रखें तो भी हमें कभी कुछ न मिल पाएगा। यदि हमें कुछ नहीं मिलता है तो यह कैसे संभव है कि हम उससे चिपके रहते हैं? अब तक हमें जितनी भी कठिनाइयो को झेलना पड़ा है वह उस वस्तु के कारण हुई है जो कि कभी अस्तित्व में थी ही नहीं ! अतः जब भी *मैं* की धारणा उत्पन्न होती है तो हमें तत्काल ही उसे दूर कर देना चाहिए और उसे फिर से न पैदा होने देने के लिए हमसे जो कुछ भी बन पड़ता है हमें प्रयास करना चाहिए। शांतिदेव *बोधिचर्यावतार* में कहते हैं :

क्व यास्यसि मया दृष्टः सर्वदर्पान्निहन्मि ते।
अन्योऽसौ पूर्वकः कालस्त्वया यत्रास्मि नाशितः।।

ध्यान पारमिता 169

वह पहले का समय कुछ और ही था जब तुमने मेरा नाश किया, परन्तु अब मैंने तुमसे होने वाले सभी दोष जान लिए हैं, अब तुम कहीं नहीं भाग सकते। तुम्हारा सारा घमंड नष्ट करूँगा।

गेशे शावोपा कहते थे कि, 'इस अल्प काल के जीवन में हमें यथासंभव इस असुर का दमन करना चाहिए।' जैसे कि लोग लामाओं के पास अभिषेक और अन्य कर्म कांडों के लिए, भुतहे घर के झाड़ फूॅक के लिए जाते हैं,ठीक इसी तरह अहं ग्राह्यता के असुर को भगाने के लिए हमें बोधिचित्त पर ध्यान करना चाहिए और अपने अंदर शून्यता के दृष्टिकोण को प्रतिस्थापित करना चाहिए। हमें पूर्ण रूप से समझना चाहिए जैसा कि गेशे शावोपा कहते थे अच्छे और बुरे अनुभव जो हम झेलते हैं वे अच्छे और बुरे कर्मों का परिणाम हैं जो हमने अतीत में दूसरों के प्रति किए हैं। उन्हें दुष्कर्मों को सांसारिक नाम और दूसरों के प्रति किए गए कर्मों को धार्मिक नाम देने की आदत थी। और एक गेशे बेन थे जो एक सकारात्मक विचार के आने पर उसकी बहुत अधिक प्रशंसा करते थे और जब भी कोई नकारात्मक विचार आता तो तुरंत उसके प्रतिपक्ष का प्रयोग करते और उसे दूर कर देते थे।

चित्त के द्वार पर पहरा देने का एक ही मार्ग भाले के प्रतिकारक द्वारा है। दूसरा कोई रास्ता नहीं हैं। जब शत्रु बलवान होता है तो हमे भी सचेत होना चाहिए। जब शत्रु मृदु हो तो हम भी थोड़ा बहुत कोमल हो सकते हैं। उदाहरण के लिए जब राज्य में गड़बड़ी हो तो अंगरक्षक निरंतर रात को बिना सोए, दिन में बिना किसी ढिलाई के राजा की सुरक्षा करेंगें। इसी तरह अहं ग्राह्यता के इस उपद्रवी पर जैसे ही यह प्रकट हो हमें शून्यता का प्रतिकारक लगाना चाहिए। गेशे शावोपा इसी को झाड़ फूॅक का अनुष्ठान कहते थे।

अतः आइए हम इस अहं ग्राह्यता को अपना शत्रु मानें। जब इसका अस्तित्व नही रहेगा तो हमारे लिए अपने से अधिक दूसरों का ध्यान रखना असंभव न होगा। जैसे ही यह भावना जन्म लेती है, हम

सभी सत्वों की दया के विषय में चिंतन करें

क्योंकि वे हमारे माता पिता रहे हैं और अतीत में अनगिनत बार उन्होंने हमें अच्छाई दी है। इस युग के सहस्त्र बुद्धों में ऐसा कहा जाता है कि बुद्ध शाक्य मुनि ही सबसे महान आकांक्षा वाले थे। क्योंकि जब दूसरों बुद्धों ने सत्य के लिए निर्वाण की धारणा की तो उन्होंने बुद्ध क्षेत्र, दीर्घायु और श्रावकों के महान संघों की कामना की। पर बुद्ध शाक्यमुति ने कलि युग मे पुनर्जन्म की प्रार्थना की और रोग, भुखमरी और युद्ध से पीडित सत्वों को शिक्षा देना कठिन होगा ऐसा उन्होंने इसे जानते हुए भी यह प्रार्थना करते हुए इस लोक में जन्म लिया तथा जो उनका नाम अथवा उनकी शिक्षा सुनेगा वह तत्काल ही निर्वाण के मार्ग पर अग्रसर होगा। इसी लिए उनके कवच समान आकांक्षा और प्रयास के कारण बुद्ध शाक्यमुनि अद्वितीय हैं और इस भाग्यशाली कल्प के सहस्त्र बुद्धों में ये श्वेत

कमल की तरह पूजे जाते हैं। हमें सभी सत्वों का कृतज्ञ होना चाहिए क्योंकि निर्वाण उन्हीं पर निर्भर है और हमारे शत्रुओं के प्रति उतनी ही प्रेम और करुणा होनी चाहिए जितनी कि हमारे मित्रों के प्रति होती है। यह सबसे महत्वपूर्ण बात है क्योंकि माता पिता, पति,पत्नी, भाई और बहनो के लिए प्रेम और करुणा स्वाभाविक रूप से स्वयं ही उत्पन्न होती है। *बोधिचर्यावतार* मे कहा गया है

सत्वेभ्यश्च जिनेभ्यश्च बुद्धधर्मागमे समे।
जिनेषु गोरवं यद्वत्र सत्वेष्विति कः कमः।।

क्षांति पारमिता 113

इस प्रकार जब प्राणी तथा बुद्ध दोनों हमारे पुण्यकर्म की सिद्धि में बराबर सहयोग देते हैं तो एक ओर बुद्धों की पूजा करना, दूसरी ओर प्राणियो का निरादर करना कहॉ तक उचित है? दोनों का समान आदर करना चाहिए।

उदाहरण के लिए यदि हम बुद्ध की मूर्ति अथवा मात्र एक शब्द अथवा ग्रंथ के एक पृष्ठ को किसी निचली सतह अथवा गंदे स्थान में देखते हैं तो हम बड़े सम्मानपूर्वक उसे उठाकर एक स्वच्छ और उच्च स्थान पर रख देते हैं। जब हम सत्वों को देखते हैं तो हमें उसी तरह उनका सम्मान करना चाहिए। जब भी टोंनपा सड़क पर किसी कुत्ते को लेटा देखते तो वह कभी उस पर पैर न रखते अपितु यह सोचकर कि उस जानवर में भी बुद्धत्व की क्षमता है घूम कर जाते। इस तरह बुद्ध और सत्वों के प्रति हममे समान आदर होना चाहिए। हम जो भी साधना करें, शरण गमन के तत्काल बाद हम बोधिचित्त भावना की उत्पत्ति करते हैं और उस क्षण के बाद अन्य सत्व हमारे अभ्यास के संबल बन जाते हैं। और इस तरह हम उनके महत्व को समझ सकते हैं। उस व्यक्ति के लिए जो कि निर्वाण प्राप्ति का इच्छुक है बुद्ध और सत्व एक समान दया रखते हैं। उन लोगों को लेकर जिनके प्रति हम इतने आभारी हैं हमें बड़े प्रबल रूप से ध्यान करना चाहिए और एक गहन मैत्री का उत्पाद करना चाहिए, उनके लिए हर सुख की कामना कर और उनके प्रति महा करुणा की भावना रख उनके दुःख से विमुक्त होने की इच्छा करनी चाहिए।

यदि लोग बीमार हैं तो हमें उनके दुःख को अपने पर लेने की कामना करनी चाहिए। जब किसी याचक से मिलें तो उसके प्रति उदार हों। इस तरह हम दूसरो के दुःख का भार अपने कंधों पर ले, उन्हें सब प्रकार का सुख, ख्याति, दीर्घायु और शक्ति इत्यादि जो भी हमारे पास हो भेज सकते हैं।

विशेषकर यदि हम मनुष्यों अथवा अन्य प्राणियों द्वारा ढाए गए अत्याचार के शिकार हैं तो हमें सोचना नहीं चाहिए कि यह जीव मुझे हानि पहुँचा रहा है,

अतः मैं इसे और इसकी आगामी पीढियो से वसूल करूँगां। 'हमें वैमनस्य नहीं रखना चाहिए। बल्कि हमें यह सोचना चाहिए : 'यह बुरा करने वाला अनगिनत जीवनो में मेरी मॉ रहा है – मेरी मॉ जिसने मेरे लिए सभी दुःखो को झेलने की परवाह नही की, मेरे बारे में कही जाने वाली सभी बुरी बातें को अनसुना कर मेरे देख रेख की और संसार के कई दुःखों को झेला। मेरे लिए इस जीव ने कई नकारात्मक कर्मों का संभार कर लिया है। पर फिर भी भ्रांति के कारण मैं उसे अतीत के एक संबंधी के रूप में पहचान नहीं पा रहा हूँ। दूसरों के हाथों जो मैं दुःख झेल रहा हूँ वह मेरे दुष्कर्मों द्वारा उकसाई गई है। अतीत के मेरे नकारात्मक कार्यों के कारण मेरे शत्रु ने मुझे चोट पहुँचाई है और नकारात्मक कर्मों का संचय किया है जिनका उसें भविष्य में प्रायश्चित करना होगा। मेरे कारण इस व्यक्ति ने अतीत में दुःख झेले हैं और निश्चित रूप से भविष्य ऐसा करेगा। 'इस तरह हमें ऐसे सत्वों के प्रति यह सोचते हुए अत्यंत स्नेहशील होना चाहिए, 'अब तक मैने केवल दूसरों का अहित किया है। इसके पश्चात, 'मैं उन्हें उनकी सभी बुराइयों से मुक्त करूँगां और उनका सहायक बनूँगां।' इस तरह हमें बड़ी गहनता से लेन देन का अभ्यास करना चाहिए।

यदि कुत्ते द्वारा काट लिया जाए अथवा कोई हम पर आक्रमण करे तो हमें अपने शत्रु की यथासंभव सहायता करनी चाहिए। और यदि हम सहायता न भी कर पाएँ हमें ऐसा करने की इच्छा का त्याग नहीं करना चाहिए। जब हम बीमार लोगों के साथ हों जिन्हें हम ठीक नहीं कर सकते तब हम उनके मस्तक के ऊपर भैषज्य बुद्ध की धारणा कर सकते हैं और यह प्रार्थना कर सकते हैं कि वे रोग मुक्त हो जाएँ। यदि हम ऐसा करते हैं तो यह अपने आप ही उनके लिए लाभकर होगा। और तो और हमें गहनतम अर्थात दृढ़ विश्वास के साथ कार्य करना चाहिए और प्रार्थना करनी चाहिए कि हानिकारक सत्व जो कि रोग के कारण हैं वे भी दुःख से छूट जाएँ और शीघ्रता से मुक्ति प्राप्त करें। हमें ऐसा निश्चय करना चाहिए कि अब से हम जो कुछ भी पुण्य कार्य करें, जिस ऐश्वर्य अथवा दीर्घायु से हम लाभान्वित हों, यहॉ तक कि बुद्धत्व भी – यह सब कुछ दूसरों के कल्याण के लिए होगा। हमें जो कुछ भी अच्छा मिले हम उसे दान कर देगें।तब क्या अंतर पड़ता है कि हमें निर्वाण मिले अथवा न मिले, हमारा जीवन दीर्घ काल का हो अथवा अल्प काल का, हम धनवान हों अथवा निर्धन। इन सब से कोई अंतर नहीं पड़ता !

यदि हमें ऐसा लगता है कि हम बुरी आत्माओं से पीडित हैं तो हमें ऐसा सोचना चाहिए, 'चूँकि अनगिनत जीवन काल में मैं स्वयं ही तुम्हारे मांस और रक्त पर जीवित रहा हूँ, तो यह स्वाभाविक है कि मैं चीजों द्वारा तुम्हारा प्रत्युपकार करूँ। इसलिए मैं तुम्हें सब कुछ दूँगां।' और हम कल्पना करते हैं कि हम अपना शरीर

उनके समक्ष खोल कर रखते हैं जैसे एक जानवर को मारते समय रखते हैं। जैसा कि *चोद* के अभ्यास में कहा गया है :

> **जो आएँ दूर से उन्हें कच्चा खाने दों !**
> **जो हैं समीप, उन्हें पका कर खाने दों !**
> **पीस लो मेरी अस्थियाँ पेट भर खा लो तुम !**
> **जो कुछ भी तुम सकते हो उठा, ले जाओ !**
> **भोग लो जो भी हो तुम्हारा सामर्थ्य !**

इसे ज़ोर से कहते हुए हम अपनी सारी आत्म ग्राह्यता को छोड़ देते हैं। हम कल्पना करते हैं कि जब हानिकारक आत्माओं ने अपनी क्षुधा तृप्त कर ली है, तो उनके शरीर नकारात्मक भावनाओं से मुक्त होकर आनंद से भर गए हैं और उनमें दो बोधिचित्तों की अनुभूति उत्पन्न हुई है। इसी तरह हम जिन्हें भूत और असुर मानते हैं जो कि मांस और रक्त का भक्षण करते हैं उन्हें हमें अपने शरीर को अर्पित करना चाहिए। हमें यह कल्पना करनी चाहिए कि हमारे अपने शरीर के इस समर्पण से वे पूर्ण रूप से तृप्त हैं और दूसरों को मारने अथवा हानि पहुँचाने का उनका भविष्य में कोई उद्देश्य नही है, और उन्हें जो भी प्राप्त हुआ है वे उसी में संतुष्ट और सुखी हैं।
संक्षेप में सभी दुःख हमारे आत्म ग्राह्यता के शत्रु की ओर से आते हैं, सभी लाभ अन्य सत्वों से मिलता है और इसलिए वे मित्रों और संबंधियों की तरह हैं। हमें यथा संभव उनकी सहायता का प्रयास करना चाहिए। जैसा लांगरी थंगपा दोर्जे ग्यालछन ने कहा, 'मैंने जितनी भी गहन शिक्षाओं का अध्ययन किया है मैं यही समझ पाया हूँ कि सभी हानि और दुःख मेरे अपने बनाए हैं और सभी लाभ और गुण दूसरों की कृपा से हैं। इसलिए मैं अपने सभी लाभ दूसरों को प्रदान करता हूँ और सभी हानियाँ स्वयं पर लेता हूँ।' उन्होंने इसे अपने पढ़े सभी ग्रंथों का एकमात्र अर्थ समझा और जीवन पर्यंत इस पर साधना की।

परमार्थ सत्य से जुड़ा बोधिचित्त का उद्देश्य
शून्यता एक अद्वितीय रक्षक है
जिससे भ्रामक दृष्टि चार काय जैसी गोचर होती है

सृष्टि और इसके निवासियों से संबंधित दुःख, मिथ्या अनुभूतियों का परिणाम है जिसकी प्रकृति समझना महत्वपूर्ण है। राग, क्रोध और अज्ञान जैसी सभी अनुभूतियाँ चित्त द्वारा निर्मित हैं। उदाहरण के लिए हम अपने शरीर को एक बहुमूल्य निधि के रूप में सोचते हैं जिसकी हमें खास देख रेख करनी है और

उसे रोग और हर प्रकार की दुर्घटना से बचाना है। हम इस प्रकार की सोच के आदी हो जाते हैं और परिणाम स्वरूप मानसिक रूप और शारीरिक रूप से कष्ट झेलते हैं। यह अनुभूति का ऐसा उदाहरण है जो चूँकि यथार्थ के किसी आधार से रहित है अतः भ्रमक है, यह किसी वस्तु के अस्तित्व पर आधारित है जिसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। यह ठीक उसी तरह है जब हम स्वप्न देखते हैं और सोचते हैं कि हम जल रहे हैं या डूब रहे हैं पर जब हम जागते हैं तो पाते हैं कि कुछ नहीं हुआ है।

परमार्थ सत्य के दृष्टिकोण से धर्मों का कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं हैं। जिसे हम 'मैं', : मेरा शरीर' 'मेरा चित्त', 'मेरा नाम' का कोई सही अस्तित्व नहीं हैं, फिर चाहे वे खतरनाक शत्रु हो अथवा स्नेहशील माता पिता हों। ठीक इसी तरह पॉच विष भी अपनी प्रकृति में शून्य हैं। इस तथ्य को चित्त में रखते हुए हमें ध्यान रखना चाहिए कि ये विष, नकारात्मक भावनाएँ कहॉ से उत्पन्न हो रही हैं। इन उत्पत्तियों के अभिकर्ता किस प्रकार दीखते हैं ; यह भावनाएँ अपने आप में किस प्रकार दिखाई देती हैं, यदि हम इनका विश्लेषण करें तो हमें कुछ भी प्राप्त न होगा। यह अभाव ही अजन्मा धर्मकाय है।

यद्यपि हर वस्तु प्रकृति से शून्य है पर यह शून्यता रिक्त स्थान अथवा रिक्त पात्र की शून्यता नहीं है। सुख, दुःख, सब तरह की भावनाएँ और अनुभूतियॉ चित्त में प्रतिबिंबित छबियों के समान अनंत रूप से प्रकट होती रहती हैं। धर्म के इस प्रतिबिंब समान स्वरूप को निमार्णकाय कहते हैं।

अनाज को यदि धरती पर न बोया जाए तो वह कभी फल नहीं देता, इसी तरह जो अजन्मा है उसका कभी अंत नहीं हो सकता। उत्पाद व्यय से परे हो जाना निरोध के परे हो जाना भी है। अनिरोध के इस अंग को ही संभोगकाय के रूप में समझा जाना चाहिए।

यदि अतीत में न जन्म है और भविष्य में न निरोध है तो ऐसा कुछ नहीं हो सकता जो वर्तमान को थामे रखे,क्योंकि अस्तित्व का अर्थ आवश्यक रूप से एक प्रारंभ और एक अंत है। उदाहरण के लिए यद्यपि ऐसा सोचा जा सकता है कि जब तक हम जीवित हैं, चित्त शरीर में निवास करता है, बल्कि निवास जैसा कुछ नहीं और कोई निवास नहीं करता, अस्तित्व जैसा कुछ नहीं और किसी का अस्तित्व नहीं होता। यदि कोई चमड़ी, मॉस, पेशियों और रक्त को अलग कर दे तो भी चित्त को कहॉ पाया जा सकता है? क्या वह मॉस में है अथवा हड्डियों में है,इत्यादि? कुछ नहीं मिलेगा क्योंकि चित्त स्वयं ही शून्य है। यह तथ्य कि चित्त की प्रकृति ही शून्य है, पर फिर भी ऐसा स्थान है जहॉ धर्म प्रकट होते हैं, पर स्वयं यह उत्पत्ति के परे है और इसलिए अनिरोध है – तीन काय का यह अविभाज्य संयोग स्वभावकाय के नाम से जाना जाता है।

यदि क्लेश अनुभूतियों को चार काय के संदर्भ में समझा जाए तो इसका यह अर्थ होगा कि जो कुछ भी क्लेशपूर्ण माना जाता है तो कुछ भी अशुद्ध नहीं है, ऐसा कुछ नहीं जिसे हमें त्यागना पड़े। न ही कुछ विशुद्ध और क्लेश हीन है जिसे हमें अपनाने का प्रयास करना चाहिए। क्योंकि निश्चित रूप से जब भ्रम मिटते हैं तो क्लेशहीन प्रज्ञा मात्र उपस्थित रहती है, जहॉ वह सदा से थी। उदाहरण के लिए जब स्वर्ण धरती में होता है तो उसमें गंदगी और दाग होते हैं,पर स्वर्ण की प्रकृति अपने आप में परिवर्तित न होने की गुंजाइश रखती है। जब उसका रसायन द्वारा शुद्धीकरण अथवा स्वर्णकार द्वारा परिष्कृत किया जाता है तो उसकी वास्तविक प्रकृति अधिकाधिक चमकती है। ठीक इसी प्रकार यदि हम क्लेश युक्त चित्त का विश्लेषण करें और इस निष्कर्ष पर पहुॅचें कि यह जन्म, निरोध और स्थायी अस्तित्व से विमुक्त है तो हम वहीं उसी समय एक प्रज्ञा पाएॅगें जो कि क्लेशहीन है। इसके आगे चूॅकि क्लेशावरण चित्त स्वयं भ्रामक होने के कारण एक स्वप्न के अनुभव के समान अस्थिर और उतार चढ़ाव लिए होता है जबकि धर्म की सच्ची और क्लेशहीन प्रकृति, बुद्ध स्वभाव अथवा तथागतगर्भता अनादि काल से रही है। वह हममें उसी तरह है जिस तरह बुद्धों में होती है। इसी कारण बुद्ध सत्वों की सहायता कर सकते हैं और इसी के कारण सत्व निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं। भ्रामक अनुभूतियों की वास्तविक प्रकृति की इस समझ के अतिरिक्त चार काय का अन्य कोई परिचय नहीं है।

हमारे सांवृतिक और परमार्थ बोधिचित्त के अनुभव को प्रोत्साहित करने के लिए अतः हमें अपने शत्रुओं के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए। उदाहरण के लिए मिलारेपा के साथ ऐसा ही हुआ जब उनके चाचा चाची उनके विरुद्ध हो गए और उनकी मॉ को उन्होंने। भिखारी की स्थिति में ला खड़ा कर दिया और अंततः उन्हें मारपा की सहायता के लिए प्रेरित किया गया। तत्पश्चात उन्होंने इस प्रकार की कड़ी तपस्या की कि अपने जीवन काल में ही उन्हें अद्वितीय उपलब्धियॉ प्राप्त हुईं जिससे उनकी ख्याति भारत की पावन भूमि और बर्फ की धरती तिब्बत में फैली। अपराधियों के कार्यों के कारण यह सब कुछ समाप्त हो गया। अतः जो कुछ प्रेरणा वे हमे दे रहे हैं उसके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए। क्योंकि निश्चित रूप से जब तक हम उपर्युक्त प्रतिकारक का प्रयोग करने मे असंभव हैं और नकारात्मक भावनाएॅ बिना हमारे ध्यान दिए हमारे अंदर कार्य कर रही हैं,उन लोगों के कार्यों के कारण जो हमें हानि पहुॅचा रहे हैं हम उन पर ध्यान दे रहे हैं। परिणामतया ऐसा प्रतीत होता है मानों वे हमारे गुरु और बुद्धों निर्माण के अंग हैं। मान लीजिए कि हम एक प्राणघातक रोग का शिकार हैं अथवा हम केवल अस्वस्थ हैं, तो हमे सोचना चाहिए,' यदि मैं बीमार न होता तो मैं धर्म के विषय में कोई चिंतन न कर इस जीवन को सुखमय बनाने की व्यर्थता

में खो जाता। पर चूँकि मैं दुःखी हूँ, मैं मृत्यु के विषय में सोचता हूँ, शिक्षा की ओर आमुख होता हूँ और उन पर चिंतन करता हूँ। यह सब मेरे गुरु तथा 'त्रिरत्न' की अनुकंपा है। हम सभी जानते हैं कि जब हमें गुरु की प्राप्ति होती है और उनसे उपदेश प्राप्त होता है तो हमारे अंदर बोधिचित्त का विकास होता है। यदि एक बार हमारे ह्रदय में बोए गए बोधिचित्त के बीज से हम अभ्यास शील बने रहें, बुरा करने वालों और जो उपद्रव वे मचाते हैं, वास्तव में साधारणतया दुःख,तो वे सभी हमारे बोधिचित्त के विकास का षड़यंत्र रचेगें। अतः हमारे शत्रुओं और हमारे गुरुओ के बीच कोई अंतर नहीं हैं। यह जानते हुए कि दुःख दो बोधिचित्तो का विकास करता है, हमें उसका पूरा लाभ उठाना चाहिए।

जब शांतरक्षित तिब्बत आए और शिक्षा देना प्रारंभ किया तो दुष्ट शक्तिओं और स्थानीय प्रेत आत्माओं द्वारा उनके कार्यों में बाधा डाली गई। भारी तूफान आया जिसने लाल पर्वत महल को भी बहा डाला। इन घोर परिस्थितियों के कारण शांतरक्षित और राजा ने गुरु पद्मसंभव को आमंत्रित किया जिन्होंने आकर बुद्ध धर्म को सूर्य के समान प्रदीप्त किया। यदि वे नकारात्मक शक्तियॉ उत्पन्न नहीं हुई होतीं, तो संभवतः बहुमूल्य गुरु को तिब्बत कभी आमंत्रित नहीं किया जाता। ठीक इसी तरह यदि बुद्ध को असुरो का सामना नहीं करना पड़ता तो वे शायद निर्वाण प्राप्त नहीं करते। इस तरह हमें सदा कठिन परिस्थितियों का अच्छा उपयोग कर निरंतर ध्यान करना चाहिए।

प्रस्थान में बोधिचित्त

उपायों में श्रेष्ठ चार अभ्यासों का होना है

जिन अभ्यासों का यहॉ संदर्भ दिया गया है वे हैं 1 गण (संभार) 2 शुद्धीकरण 3 बुरी शक्तियों को अर्पण पूजा और 4 धर्म रक्षकों की पूजा है।

1 *गण* (संभार) जब हम पीड़ा में होते हैं तो स्वाभाविक रूप से हमारी कामना रहती है कि हम दुःख में न हों। इसलिए यदि हम दुःख नहीं चाहते।और स्वस्थ रहना चाहते है तो हमें भैषज्य बुद्ध के नाम का जाप करना चाहिए तथा बुद्धों और बोधिसत्वों की पूजा करनी चाहिए – जो सब स्वास्थ्य और सुख का कारण हैं। परिणाम स्वरूप हमें लामाओं और त्रिरत्नों की पूजा के लिए प्रयासशील होना चाहिए, साथ ही संघ के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए प्रेत आत्माओं को तोर्मा देना चाहिए।

हमें शरणागत होकर बोधिचित्तोत्पाद करना चाहिए। तत्पश्चात हमें गुरु को और त्रिरत्न को एक मंडल समर्पित करते हुए इस तरह की प्रार्थना करनी चाहिए : मेरे लिए रोगी होना बेहतर है तो मैं प्रार्थना करता हूँ कि तुम मुझे मेरे पाप कर्मों के दागों और क्लेशावरणों को दूर करने हेतु रोग भेजोगे। पर यदि मेरे ठीक हो जाना अर्थवान है तो मैं धर्म प्राप्त करूँगां, मै शारीरिक और मानसिक

रूप गुणों का अभ्यास करूँगा और मार्ग पर विकास करूँगा अतः मैं प्रार्थना करता हूँ तुम मुझे स्वास्थ्य का आशीर्वाद दोगे। पर यदि मेरे लिए मृत्यु बेहतर है जिससे मैं विशुद्ध बुद्ध क्षेत्र में पुनर्जन्म प्राप्त करूँ तो मेरी प्रार्थना यह है कि तुम मुझे मृत्यु का आशीर्वाद दो'। इस तरह अकसर प्रार्थना करने की आवश्यकता है,क्योंकि इस तरह हम स्वयं को आशा और भय से मुक्त करेंगें।

2 *शुद्धीकरण* जब हम कष्ट झेलते है, तब हमें अपनी असुविधा को एक संकेत के रूप में लेना चाहिए जो हमें स्मरण दिला रहा है कि छोटे छोटे कष्ट से बचना सभी नकारात्मक कर्मों को त्यागना है। नकारात्मक कर्मों के शुद्धीकरण में चार बल के बारे में सोचा जाना चाहिए।

सबसे प्रथम विरक्ति की शक्ति है, अतीत में किए गए सभी दुष्कर्मों के प्रति पश्चाताप, ठीक उसी तरह जिस प्रकार का पश्चाताप विष पान के बाद होता है। बिना पश्चाताप के गलतियो को स्वीकार करना निरर्थक है और विरक्ति की शक्ति केवल अपने नकारात्मक कार्यों के प्रति पूरी तरह शर्मिंदा होना है। दूसरा बल सुधरने का निश्चय है। अतीत में हम नकारात्मक कार्यों की बुराइयों को पहचानने में असफल रहे हैं पर अब से अपने जीवन की कीमत पर भी हम नकारात्मकता से बचने का निश्चय करते हैं। तीसरा बल आलंबन का है। चूँकि स्वीकारोक्ति के लिए यह आवश्यक है कि कोई ऐसा हो जिसके समक्ष स्वीकार किया जाए हम त्रिरत्नो को वस्तु के रूप में लेते हैं जिनके काय, वाणी और चित्त सदैव दुष्कार्यों से सदैव मुक्त रहते हैं और जो बिलकुल पक्षपाती नहीं होते। जब हम उनके शरणागत होते हैं तो स्वयं को विशुद्ध करने का सबसे उत्तम तरीका उनकी उपस्थिति मे बोधिचित्तोत्पाद है। जैसा कि कहा गया है कि कल्प के अंत में समूचे वन एक क्षण में अग्नि में राख हो जाएँगें, ठीक इसी प्रकार बोधिचित्तोत्पाद से सभी नकारात्मक कार्य पूरी तरह विशुद्ध हो जाएँगें। चौथा बल प्रतिपक्ष है। इस प्रकार का एक प्रतिपक्ष, शून्यता ध्यान है क्योंकि नकारात्मक कार्य भी प्रकृति से शून्य होते हैं और द्रव्यसत के रूप में स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रखते। एक अन्य प्रतिकार के रूप में ऐसा कहा जाता है कि अवलोकितेश्वर मंत्र के विचार मात्र से निर्वाण प्राप्त हो सकता है। मणि के छह अक्षर,चेनरेज़िग द्वारा संपादित छह प्रज्ञा पारमिता से मेल खाते हैं और उनके प्रतीक हैं। मंत्र के श्रवण से ही सत्व संसार से विमुक्त होते हैं ; इन मंत्रों के चिंतन से यह इन छह पारमिताओं को प्राप्त करते हैं। मणि के लाभ इतने व्यापक हैं कि यदि इस धरती को कागज़ के रूप में काम में लाया जाए, वृक्षों की कलम बनाई जाए और समुद्र की मसि बनाया जाए और यदि सभी बुद्ध उसकी व्याख्या करें तो भी उनके गुणों की व्याख्या अनंत होगी। शून्य पर ध्यान जैसे अभ्यास अथवा मणि का जाप, कुशल चरित्र के प्रतिकारक लगाने की शक्ति

रखता है। *श्वेत पद्म करुणा* सूत्र में बुद्ध ने कहा यदि कोई इन षड़ाक्षरों के जाप का सही अभ्यास करना चाहे, तो उसके शरीर में रहने वाले पर जीव भी अवलोकितेश्वर के बुद्ध क्षेत्र में पुनर्जन्म लेंगें।

जब यह सभी बल उपस्थित होते हैं तो स्वीकारोंक्ति का अभ्यास उचित ढंग से होता है। जैसा कि कदम्पा गुरुओं द्वारा कहा गया है कि नकारात्मक गुणों का बस एक ही सद्गुण होता है : स्वीकारोक्ति से उन्हें शुद्ध किया जा सकता है।

3 *बुरी शक्तियों को अर्पण* जब बुरी आत्माओं को तोर्मा चढ़ाया जाता है तो हमें पूरे निश्चय के साथ कहना चाहिए, 'जब तुम मेरा बुरा करते हो मैं क्षांति का अभ्यास करता हूॅ और इसलिए तुम मेरे बोधिचित्त के प्रशिक्षण मे सहायता कर रहे हो। मैं कृतज्ञ हूॅ। अपनी महान शक्ति का प्रयोग इस प्रकार करो कि सभी सत्वों के दुःख मुझ पर आ जाएॅ।' पर यदि हममें ऐसे साहस का अभाव हो, तो हम केवल प्रेम और करुणा से उन्हें तोर्मा चढ़ा कर कह सकते हैं, 'मैं अभी और भविष्य में अच्छा करने का प्रयास करूॅगा, धर्म को प्राप्त करने में मेरे बाधक न बनो।'

4 *धर्म पालों की पूजा* जब हम धर्म पाल महा काल पलदन ल्हामों और उनके जैसे अन्य को तोर्मा चढ़ाते हैं। हम अपने बोधिचित्त के ध्यान और अभ्यास में उनकी सहायता की प्रार्थना करते हैं ताकि हम सभी सत्वो की उसी तरह देख रेख कर सकें जैसा कि हम अपने माता पिता और अपने बच्चो के लिए करते हैं। चलिए हम स्वयं को अपने शत्रुओं के प्रति कोध से पूरी तरह मुक्ति और आत्म ग्राह्यता की भ्रांति पर काबू पाने के लिए प्रार्थना करें। आइए हम अपने मार्ग से संघर्ष के सभी कारणों को दूर करने और अनुकूल परिस्थितियों को लाने के लिए उनसे कहें।

अप्रत्याशित को मार्ग पर लाने के लिए तत्काल ही प्रारंभ करें प्रशिक्षण

ऐसा कुछ भी निश्चित नहीं है कि हम रोगों, बुरी शक्तियों इत्यादि का शिकार नहीं होंगें। यदि हमें गंभीर रोग लगा हो तो हमें सोचना चाहिए, 'मुझ जैसे अनगिनत लोग इस संसार में कष्ट पा रहे हैं', इस तरह हमें करुणा की प्रबल भावना का उत्पाद करना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि हमें ह्रदय रोग लगा हो तो हमें सोचना चाहिए, 'जहॉ तक आकाश है ऐसे सत्व हैं जो इस प्रकार का कष्ट झेल रहे हैं' और कल्पना करें कि उनके सभी रोग हमारे ह्रदयों में घनीभूत हो चुके हैं।

यदि हम पर बुरी शक्तियो की चोट पड़े तो हमें सोचना चाहिए, 'मुझे चोट पहॅुचाकर यह बुरे जीव मेरे बोधिचित्त के अभ्यास में सहायक हैं, वे मार्ग में

मेरे विकास की दृष्टि से बहुत महत्व के हैं और उनका बहिष्कार करने के स्थान पर उनका धन्यवाद करना चाहिए।' हमें उनके प्रति उतना ही कृतज्ञ होना चाहिए जितना कि हम अपन शिक्षकों के प्रति होते हैं।

और जब हम किसी को कठिनाई में देखते हैं तो यद्यपि हम तत्काल ही उनका दुःख अपने पर नहीं ले सकते, हमें उन्हें उनके दुर्भाग्य से विमुक्त होने की कामना करनी चाहिए। इस तरह की प्रार्थनाएँ अंततः फलीभूत होंगीं। और यदि किसी में बहुत प्रबल क्लेश हों तो हमें सोचना चाहिए, 'उनकी सभी भावनाएँ मुझ में घनीभूत हो जाएँ।' एक प्रबल निश्चय के साथ हमें इस प्रकार की सोच बनाई रखनी चाहिए जब तक कि हमें ऐसे संकेत अथवा भावनाएँ नहीं मिल जाती कि हम स्वयं पर दूसरों के दुःख और भावनाओं को लेने में समर्थ हुए है। यह हमारे अपनी भावनाओं की बढोत्तरी अथवा दूसरों के दुःख और पीड़ा की वास्तविक अनुभूति का रूप ले सकता है।

इस तरह कठिनाइयों को मार्ग पर लाया जाता है अपने आप को आशा और भय से दूर, अर्थात विमुक्त करने के लिए – उदाहरण के लिए हम आशा करते हैं कि बीमार नही पड़गें,अथवा भय है कि हम बीमार पड़ सकते हैं। इस तरह वे सुख और दुख के समान स्वाद का अनुभव कर पाएँगें। अंततः बोधिचित्त की शक्ति से हम ऐसे बिंदु पर पहुँच पाएँगें जहाँ हम बोधिचित्त प्राप्ति की आशा और ऐसा न कर पाने के भय से भी विमुक्त हो जाएँगें। इसलिए हमें अपने शत्रुओं से प्रेम होना चाहिए और उन पर क्रोधित होने अथवा उनके प्रति किसी भी प्रकार के नकारात्मक विचार से यथा संभव बचना चाहिए। हमें यथासंभव अपने परिवार और संबंधियों के प्रति पक्षपात पूर्ण मोह पर काबू पाना चाहिए। यदि तुम किसी टेढ़े वृक्ष को एक लंबी लकड़ी के खंभे से बाँध दोगे तो अंततः वह सीधा बढ़ेगा। अब तक हमारे चित्त हमेशा टेढ़े रहे हैं यह सोचते हुए कि हम किस तरह लोगों को ठग कर धोखा देते रहेगें पर यह अभ्यास जैसे गेंशे लांगरी थंगपा ने कहा,हमारे चित्त को सीधा और सच्चा बना देगा।

IV
जीवन के मार्ग के रूप में अभ्यास की व्याख्या

मूल उद्देश्य का लघु संक्षेपीकरण :
पॉच बलों का अभ्यास करो

यदि हममें यह पॉच *बल* हो तो हममें बोधिचित्तोत्पाद होगा। वे निम्नलिखित हैं : 1 निश्चय का *बल,* 2 परिचय का *बल,* 3 सकारात्मक बीज का *बल,* 4 जुगुप्सा का *बल,* और 5 आकांक्षा का *बल,*।

1 निश्चय का *बल:* उदाहरण के लिए यह एक दृढ़ निश्चय लेना है कि इस महीने, इस वर्ष जब तक हमारी मृत्यु नहीं हो जाती अथवा जब तक कि हमें निर्वाण नहीं मिलता हम बोधिचित्त का त्याग नहीं करेंगें; हमें दूसरे चोट अथवा आघात क्यों न पहुँचाए पर फिर भी हम कोध को न आने देंगें। और इस प्रबल निश्चय को बार बार पुष्ट करना चाहिए।

2 परिचय का *बल:* प्रारंभ में ध्यान कठिन होता है पर यदि हम उस में लगें रहें तो यह अपेक्षाकृत सरल हो जाता है। क्योंकि जैसी कहावत है,' ऐसा कुछ नहीं जिसके हम आदी नहीं हो सकते'

एक समय की बात है कि एक बहुत ही कंजूस व्यक्ति था जो कुछ भी दे सकने मे अपने को असमर्थ पाता था। वह बुद्ध से मिलने गया।

मेरे लिए उदार होना असंभव है, 'वह बोला, मैं क्या करूँ?'

बुद्ध बोले, 'कल्पना करों', 'कि तुम्हारा दायॉ हाथ तुम स्वयं हो और तुम्हारा बायॉ हाथ एक गरीब दु:खी व्यक्ति है। अपने दाऍ हाथ से बाऍ हाथ को कुछ बासी खाना दो जो तुम्हें पसंद नही अथवा जिसकी तुम्हें आवश्यकता नहीं। यह आदत डालने के लिए भरसक प्रयास करों। ऐसा तब तक करते रहो जब तक तुम कंजूसी छोड़ नहीं देते।

उस व्यक्ति ने अभ्यास प्रारंभ किया पर वह इतनी तंग मुट्ठी वाला था कि प्रारंभ में वह कुछ बता शेष अथवा उसे जो अच्छा नही लगता था वही खाना दे पाया। पर कमशः उसे आदत पड़ गयी और वह दिन आया जब उसे इतनी कंजूसी का अनुभव न हुआ। उसके बाद वह बुद्ध से मिलने गया और उन्हें बताया, 'अब जब मैं अपने दाऍ हाथ से बाऍ हाथ को खाना देता हूँ तो मुझे इतनी कंजूसी का

अनुभव नहीं होता।' बुद्ध ने उत्तर दिया, 'अब अपने दाएँ हाथ से जो तुम स्वयं हो कुछ स्वर्ण, रेशमी अथवा कीमती वस्त्र अपने बाएँ हाथ को दो जिसकी कल्पना तुम एक भिखारी के रूप में करते हो। यह देखने का प्रयास करो कि तुम बिना किसी लालच के मुक्त ह्रदय से दे सकते हो'। उस व्यक्ति ने प्रयास किया ओर जब उसे ऐसी आदत पड़ गयी तो वह पुनः बुद्ध से मिलने गया। 'अब तुम एक उपकारी हो सकते हो,' बुद्ध बोले, 'तुम मोह से मुक्त हो; जिन्हें खाने और वस्त्रों का अभाव है तुम उन्हें दे सकते हो।'

अपनी कृपणता से मुक्त हो वह आदमी कई भिखारियों और निर्धन लोगों की सहायता करने लगा। उसने क्रमशः अभ्यास किया और अंततः उसकी उदारता बिना डावॉडोल हुए स्थिर हो गई। वह समझ गया कि कृपणता से अथवा संपत्ति के मोह में कोई तुक नहीं है। वह भिक्षु बन गया और एक अर्हत के स्तर तक पहुॅच गया। इसी तरह निरंतर अभ्यास से व्यक्ति दोनो बोधिचित्तों में कौशल प्राप्त कर सकता है।

3 सकारात्मक बीजों का *बल*यह वास्तव मे पुण्य संभार है। मंदिरों और मठों में जाकर पुण्य वस्तुओं के समक्ष साष्टांग और भक्ति से हमें प्रार्थना करनी चाहिए, 'मैं दोनों प्रकार के बोधिचित्तोंत्पाद में सक्षम हो सकूॅ। मैं शांतिपूर्ण रहूँ और जो मेरी हानि करते हैं उनके प्रति कोध हीन रहूॅ। अपने मित्रों और संबंधियों के प्रति इकतरफे मोह से मुक्त रहूॅ। इस तरह निरंतर प्रार्थना से और बुद्ध तथा बोधिसत्वों की शक्ति से हम इन गुणों को प्राप्त कर पाएँगें।

4 जुगुप्सा का *बल* ,सावधानी से विचार करें तो यह देखना संभव होगा कि इस जीवन में अनुभूत सभी दुःख और क्लेश आत्म ग्राह्यता के विनाशकारी आवेग के कारण हैं। सभी रोगों का कारण आत्म ग्राह्यता है। इसलिए जब भी यह उत्पन्न हो फिर चाहे वह एक क्षण के लिए ही क्यों न हो हमें प्रतिपक्ष का प्रयोग करना चाहिए, ठीक उस डॉक्टर की तरह जो हमारे बीमार पड़ने पर हमें उपचार के लिए दवा देता है। जैसी कहावत है, 'सूअर की नाक पर चोट करों और चिराग की सफाई उसी समय कर दो जब वह गरम हो।' जब कोई क्रोधित सूअर हमारी तरफ झपटता है तो यदि हम एक लकड़ी से उसकी नाक कोंच दे। तो वह पीड़ा न सहन होने के कारण तत्काल ही घूमकर भाग जाएगा। यदि हम घी के चिराग को गर्म रहते ही साफ कर दे। तो कार्य बहुत सरलता से हो जाएगा। ठीक इसी तरह इसके पूर्व कि आत्म ग्राह्यता ने पर्याप्त बल अर्जित कर लिया हो यदि हम प्रतिपक्ष का प्रयोग करें तो हम उसके प्रभाव में न आएँगें।

5 आकांक्षा का बल जब भी हम कोई सकारात्मक कार्य समाप्त करें तो हमें प्रार्थना करनी चाहिए, 'अब से निर्वाण प्राप्ति तक मैं कभी भी दोनो। बोधिचित्त का परित्याग न करूँ। जो भी संघर्ष मेरे सामने आएँ मैं मार्ग के लिए उन्हें एक

सीढ़ी के समान काम में ला सकूँ। 'इस तरह प्रार्थना करते हुए हमें गुरु, त्रिरत्न और धर्म पालों से उनकी सहायता की याचना करते हुए उनकी पूजा करनी चाहिए।

इन पॉच बलों के बारे में कहा गया है कि वे *हुँ* अक्षर में संपूर्ण शिक्षा का संक्षेपीकृत रूप हैं। इसका अर्थ यह है कि चित्त प्रशिक्षण की सभी गहन और विस्तृत व्याख्याएँ इन पंच बलों में निहित हैं। अतः हमें पूरे उत्साह के साथ उसका अभ्यास करना चाहिए जिस तरह बुद्ध ने स्वयं किया जब वे अपने एक पूर्व जन्म में राजकीय सन्यासी क्षांतिवादिन थे। किंवदन्ती कि है जब एक सन्यासी के रूप में वे वन जा चुके थे, उनके छोटे भाई गद्दी पर बैठे। एक बार राजा जो छोटे भाई थे एक यात्रा पर गए और एक स्थान पर वह विश्राम के लिए रुके और सो गए। इस बीच उनकी रानियॉ, मंत्री, और नौकर चाकर सन्यासी क्षांतिवादिन के दर्शन के लिए गए जिन्हें वे पहले से ही जानते थे और उनसे उपदेश की प्रार्थना की। जब राजा की नींद खुली तो उन्होने स्वयं को अकेला पाया ओर यह सोचते हुए कि रानियॉ, मंत्री, और नौकर चाकरों ने उन्हे अकेला छोड़ दिया वे अत्यंत कोधित हुए। वे उठे, उनकी खोज की और उन्हें सन्यासी के चारों ओर पाया। बिना यह समझे कि वह धार्मिक व्यक्ति उन्हें धर्म की शिक्षा दे रहा था उस राजा ने सोचा कि वह उनकी रानियों और मंत्रियों को गुमराह कर उन्हे भ्रष्ट कर रहा है।

राजा चिल्लाया, 'तुम कौन हो' क्योंकि जब उसके भाई ने राज्य छोड़ा था तो वह बहुत छोटा था और इसलिए वह उसे पहचान न सका।

'मैं सन्यासी क्षांतिवादिन हूँ', उसके बड़े भाई ने कहा।

खैर देखा जाएगा कि तुम इस नाम के योग्य हो अथवा नहीं, राजा बोला। देखतें हैं कि तुमने कितनी क्षांति (सहन करने की शक्ति) है। ऐसा कहते हुए उसने ऋषि का दायॉ हाथ काट दिया और पूछा, 'अच्छा क्या तुम यह सहन कर सकते हो?

'हॉ मैं कर सकता हूँ' उत्तर आया

सन्यासी का बायॉ हाथ काटकर राजा बोला, 'क्या तुम यह भी सहन कर सकते हो?

'हॉ', वह बोले

फिर राजा ने यह कहते हुए सन्यासी का सर धड़ से अलग कर दिया कि, 'क्या तुम यह भी सहन कर सकते हो?

'हॉ', वह बोले

और इस तरह उसने सन्यासी के हाथ और सर काट दिया। पर उसके घावों से रक्त के स्थान पर एक दूधिया पदार्थ बहने लगा। राजा शांत हो गया और यह

सोचते हुए कि यह कोई साधारण व्यक्ति नही हो सकता उसने अपने सैनिको से पूछा कि वह कौन है। 'यह आपके भाई क्षांतिवादिन है जिन्होने बहुत समय पहले वानप्रस्थ के लिए राज्य का त्याग कर दिया था', वे बोले। इस पर राजा को गहरा पश्चाताप हुआ और वह रोने लगा। अब क्षांतिवादिन तो एक बोधिसत्व थे और यद्यपि उनका सिर कट चुका था पर वे बोल सकते थे। वे बोले जैसे जैसे तुम प्रश्न पूछते रहे तुमने मेरे हाथ और सर काट दिया। इसलिए भविष्य में जब मैं बुद्ध हो जाऊँगां और जब तुम मुझसे प्रश्न पूछो तो मैं तुम्हारे क्लेशों को दूर कर सकूँ'।

वास्तव में क्षांतिवादिन बाद में बुद्ध शाक्यमुनि बनने वाले थे।

बुद्ध के निर्वाण के बाद उनके पहले पॉच शिष्य जो कि एक पहले जन्म में क्षांतिवादिन के भाई थे ने पूछा : 'संसार क्या है'?

बुद्ध ने उत्तर दिया 'संसार की प्रकृति दु:ख है'

फिर उन्होंने पूछा, 'दु:ख कहॉ से उत्पन्न होता है?'

बुद्ध ने उत्तर दिया, 'दु:ख क्लेशों से उत्पन्न होता है?'

फिर उन्होंने पूछा, 'हम दु:ख के कारणों को किस तरह आमूल रूप से नष्ट कर सकते है?'

बुद्ध ने उत्तर दिया, 'तुम्हें मार्ग का पालन करना चाहिए'

फिर उन्होंने पूछा, 'मार्ग के पालन का क्या लाभ है?'

बुद्ध ने उत्तर दिया, 'इससे सभी कर्मों और भावनाओं का निरोध हो जाता है', और इसी शिक्षा से पॉच शिष्य अर्हत बनें। इसलिए यद्यपि क्षांतिवादिन का सर काट दिया गया था निर्वाण प्राप्ति की उसकी इच्छा शक्ति के कारण वह उसे बुरे कार्मिक कार्य को बाद में राजा ही उसके शिष्य बनने के सकारात्मक हेतु में रूपांतरित करने में समर्थ हो सका। इससे हम देख सकते हैं कि क्यों धर्म आकांक्षा की प्रार्थना की आवश्यकता की शिक्षा दी जाती है।

अब हम धर्म की परंपरा के अनुसार मृत्यु के निर्देशों के विषय में बात करेगें। चेतना के स्थानातंरण के अभ्यास के लिए चित्त प्रशिक्षण के शिक्षा के

अनुसार जैसा कि मूल पद में कहा गया है

कैसे मृत्यु का वरण किया जाए महायान की शिक्षा

यह पॉच शिक्षाऍ हैं, महत्वपूर्ण है कि तुम किस तरह कियाशील होते हो

यह पंच बल वहीं हैं जिनका उल्लेख अभी हुआ है, 1 सकारात्मक बीज, 2 इच्छा, 3 जुगंप्सा, 4 निश्चय और 5 परिचय।

1 सकारात्मक बीज का बल : जब हम साधकों को अनुभव होता है कि हम मृत्यु के निकट हैं, कि हम एक प्राणघातक रोग के कब्ज़े में हैं और अपने जीवन को दीर्घ करने का कोई रास्ता नहीं है तो हमें अपनी सारी वस्तुओ को जहॉ कहीं भी

यह अधिकतम लाभकारी और पुण्यकारी हो अपने गुरु और त्रिरत्न को समर्पित कर उनका दान कर देना चाहिए। हमें बिना किसी व्यक्ति और वस्तु के प्रति मोह और विद्वेष के अपने सारे अधूरे कार्यों की ओर ध्यान देना चाहिए

2 इच्छा बल : अपने गुरु और त्रिरत्नों की सप्तांग पूजा करते हुए हमें इस तरह प्रार्थना करनी चाहिए: मैं अंतराभव मे भय मुक्त रहूँ और अपने सभी आगामी जन्मों में मुझे दोनों बोधिचित्तों के अभ्यास का आशीर्वाद प्राप्त हो। मुझे जिनों का आशीर्वाद प्राप्त हो, विशेषकर उस गुरु का जिन्होंने मुझे' चित्त प्रशिक्षण निर्देश'. बोधिचित्त अभ्यास की शिक्षा दी है। हमें बारंबार इस प्रकार की प्रार्थना करनी चाहिए इस विश्वास के साथ कि हमारे गुरु हमारी रक्षा करेंगें।

3 जुगुप्सा बल हमें याद रखना चाहिए कि आत्म दृष्टि ने अतीत में हमें दुःख ही दिए हैं। अभी भी यह आशा कि निरंतर मैं जीवित रहूँगां अपने शरीर को एक अनमोल वस्तु मानकर उससे चिपके रहना हमें चिंता में डालती है हमारी संपत्ति किस प्रकार काम में लाई जाएगी आदि आदि कई दुखों को जन्म देती है। यदि अब भी हम अपने आप को इस प्रकार की ग्राह्यता से मुक्त करने में असमर्थ होते हैं तो हमें कभी शांति नहीं मिल सकती। हमें अपने शरीर को मिट्टी और पत्थर की तरह छोड़ देना चाहिए यह सोचते हुए कि उनसे चिपके रहने में कोई तुक नहीं है। उनके प्रति मोह के कारण ही हम कष्ट झेल रहे हैं। बस देखो! – बाहर से वे चमड़ा है, अंदर वे मॉस, रक्त, मज्जा और अनेक प्रकार की जुगुप्सा पैदा करने वाली वस्तुओं से भरे हैं। वास्तव में वे और कुछ नहीं पर गंदगी के थैले हैं। उन्हें जला दो; उन्हें चिड़ियों और कुत्तों द्वारा खाने दों! इस प्रकार चिंतन करते हुए हम अपनी आत्म तुष्टि की भावना त्यागते हैं।

4 निश्चय का बल हमें अपने आप को स्मरण दिलाते रहना चाहिए कि जब हमें अंतराभव की अवस्था से गुज़रना पड़ता है उस समय यदि हम अनमोल बोधिचित्त पर ध्यान करने हुए अर्थात सभी बुद्धो और बोधिसत्वों सत्वों पर ध्यान कर पाते हैं तो हमारे लिए अधम लोकों मे पतन असंभव होगा। प्रबल निश्चय से बोधिचित्त का निरंतर अभ्यास के लिए ठानने पर हम स्वयं को अंतराभव के भय से सुरक्षित कर सकते हैं।

5 परिचय का बल हमें अभी व्याख्यायित किए गए तकनीक के बारे में निरंतर चिंतन करना चाहिए : उभय रूपी बोधिचित्त का अभ्यास किस प्रकार किया जाए, किस तरह दुख का सुख से स्थानांतरण किया जाए, जो शत्रु हैं उनके प्रति करुणा का विकास किस प्रकार किया जाए। हमें इस प्रकार जीवन बिताना चाहिए कि चित्त प्रशिक्षण के निरतंर स्मरण से जब हमारी मृत्यु का क्षण आएगा और हम बहुत अधिक पीड़ा में होंगें हम उसका प्रयोग कर पाएँ।

अब जब मृत्यु का क्षण आता है, तो आपको यह ठीक वही करना चाहिए जिस प्रकार बुद्ध ने अपने परिनिर्वाण के समय किया, दाईं करवट लेकर – अपने सिर दाएँ हाथ पर रखें। अपने दाएँ हाथ की छोटी उंगली से दाईं नासिका को बंद करते हुए बाईं नासिका से श्वास अंदर लें। मैत्री पर ध्यान करें सभी सत्वों जो कि विस्तृत गगन के समान अनेक हैं के सुख की कामना करते हुए करुणा उत्पाद करें इस इच्छा से कि वे हर प्रकार के दुःख से मुक्त हों। अपने प्रश्वास और निश्वास के अवलंब से यह कल्पना करों कि अपना सारा सुख, आराम और संपत्ति को बाहर छोड़ रहे हैं और उन्हें भेज रहे हैं जो कष्टों को झेल रहे हैं। अन्य लोगों की सभी बीमारियों, बुरी और नकारात्मक भावनाओं और क्लेशों को अपने पर ले रहा हूँ।

बाद में। चिंतन करना चाहिए कि संसार और निर्वाण स्वयं भी स्वप्न के समान अथवा जादूगर के जादू भरे खेल के समान भ्रांत प्रकृति के हैं। सभी वस्तुएँ स्व अस्तित्व रहित होती हैं। सभी केवल चित्त की अनुभूति है और स्वभावसत कुछ नहीं होता। ऐसे में वहाँ भय का कोई कारण नहीं है, चाहे यहाँ हो अथवा अंतराभव में। बिना किसी मानसिक ग्राह्यता के उक्त भावना में स्थिर रहें।

एक बार एक वृद्ध महिला और उसकी बेटी नदी के प्रवाह में बह गए। उस महिला ने सोचा, 'काश मेरी बेटी बच जाती, मुझे चिंता नहीं यदि मैं डूब भी जाऊँ! बेटी ने सोचा,' क्या फर्क पड़ता है यदि मैं मर भी जाऊँ? केवल मेरी माँ बच जाए ! 'वे दोनों ही मारे गए, पर चूँकि उनकी अंतिम प्रेरणा इस प्रकार के प्रबल प्रेम की थी, उन दोनों का पुनर्जन्म देवलोक में हुआ। हममें इस प्रकार के मैत्री भरे विचार सदैव होना चाहिए और जब हम मरणासन्न हों तो हमें बोधिचित्तों के दोनों रूपों पर बदल बदल कर ध्यान करना चाहिए।

मृत्यु के समय चेतना के स्थानांतरण पर कई जाने माने और प्रसिद्ध निर्देश उपदेश हैं पर इसके समान कोई अन्य उत्कृष्ट, आश्चर्यजनक और अनोखा नहीं है।

V
चित्त प्रशिक्षण में प्रवीणता के मानक

सभी धर्मों का एक ही उद्‌देश्य है

बुद्ध ने अस्सी हज़ार विभिन्न शिक्षाएँ दीं जो सभी आत्मदृष्टि के शमन करने के लिए तैयार की गई थी। यही एक मात्र कारण था कि उन्होंने उसे सामने रखा। यदि वे अपनी आत्मदृष्टि के प्रतिपक्ष के रूप में कार्य न करें तो सभी अभ्यास व्यर्थ हैं जैसा कि बुद्ध के चचेरे भाई देवदत्त का उदाहरण है। उन्हें उतने सूत्र याद थे जितने कि एक हाथी की पीठ पर लादे जा सकते हैं पर चूँकि वे आत्मदृष्टि से स्वयं को मुक्त न कर पाए, इसलिए अपने अगले जन्म में वे नरक में पैदा हुए।

जिस सीमा तक हम स्वयं को आत्मदृष्टि की भावना से मुक्त करने में संभव हो पाए हैं वह यह स्पष्ट कर देगा कि हमने धर्म का उचित प्रयोग किस हद तक किया है। इसलिए आइए हम कठोर परिश्रम करें

दोनों साक्षियों में बेहतर पर निर्भर रहें

यदि हमने इस प्रकार अपना अच्छा प्रभाव जमाया हो कि लोग कहें कि इस व्यक्ति ने बोधिचित्त का बहुत अच्छा अभ्यास किया है, 'तो यह एक प्रकार का साक्ष्य होगा पर यदि हम इसके विषय में सोचें तो हम देख सकते हैं कि जब तक कि ऐसे व्यक्तियों में हमारे चित्त को पढ़ने की क्षमता हो, तब तक हमारी मानसिक प्रकियाएँ उनसे छिपी होंगीं; वे नहीं जान पाएँगें कि हमने सभी प्रतिपक्षों का प्रयोग किया है अथवा नहीं। अतः हमें स्वयं का परीक्षण करना चाहिए कि क्या हम कम क्रोधित, आत्मदृष्टि में कम हुए हैं और क्या हम सुख और दुख के आदान प्रदान का अभ्यास कर पाने मे समर्थ हुए हैं। यही प्रमुख साक्ष्य है जिस पर हमें निर्भर होना चाहिए। हमें इस प्रकार का जीवन जीना चाहिए कि हमारी अंतरात्मा मुक्त हो।

मिलारेपा ने कहा : मेरा धर्म है कि मृत्यु के समय मुझे किसी बात के लिए लज्जित न होना पड़े। 'पर अधिकांश लोग इस प्रकार के चिंतन को कोई महत्व नहीं देते। हम ऐसा दिखाते हैं कि हम बहुत शांत हैं और हमारी वाणी मीठी है

ताकि आम लोग जो कि हमारे विचार नहीं जानते कहते हैं' यह सच्चा बोधिसत्व है'। पर वे हमारा केवल बाहरी आचरण देखते हैं।

महत्वपूर्ण बात यह है कि हम ऐसा कुछ न करें कि हमें बाद में पश्चाताप करना पड़े। इसलिए हमें बड़ी ईमानदारी से स्वयं का परीक्षण करना चाहिए। दुर्भाग्यवश हमारी आत्मदृष्टि इतनी स्थूल है कि हममें यदि एक छोटा सा गुण भी है तो हम सोचते हैं कि हम बहुत महान हैं। दूसरी ओर यदि हममें बहुत बड़ी कमी हो तो भी हम ध्यान तक नहीं देते। कहावत है 'अहंकार के शिखर पर सद्गुणों का पानी नहीं ठहरता।' इसलिए हमें बहुत सावधान रहना चाहिए। यदि अपने आप की भली भांति जॉच करने पर हम ह्रदय पर हाथ रखकर ईमानदारी से यह सोच सकें कि, 'मेरे कार्य ठीक हैं' तो यह संकेत है कि चित्त प्रशिक्षण में हमने कुछ प्रगति की है। तब हमे प्रसन्न होना चाहिए कि हमारा अभ्यास अच्छी तरह हुआ है और भविष्य में उससे भी अच्छा करने का निश्चय करना चाहिए उसी तरह जैसे कि पूर्व बोधिसत्वों ने किया था। हर प्रकार से हमें प्रतिपक्ष का उत्पाद अधिक से अधिक करना चाहिए और इस प्रकार कर्य करना चाहिए कि हम अपने आप में शांति का अनुभव कर सकें।

सदा हर्ष उल्लास बनाए रखो

अपनी चित्त प्रशिक्षण की शक्ति के कारण कदम्प गुरु सदैव परिस्थितियों के सकारात्मक पक्ष की ओर देख पाते थे फिर चाहे उन्हें कुछ भी हो जाए। यदि उन्हें कुष्ठ रोग भी हो जाए तो भी वे हॅसमुख ओर प्रसन्न बने रहेंगें यह सोचकर कि कुष्ठ रोग की मृत्यु पीड़ा रहित होती है। निस्सदेह कुष्ठ रोग सब बीमारियों सबसे बुरी है पर हमें यह निश्चय करना चाहिए कि यदि हम उसके शिकार हो जाएँ तो भी हम अपने पर दूसरों के दुःख को लेते हुए जो कि उस रोग के शिकार हो चुके हैं सुख के स्थान पर दुःख के आदान प्रदान का अभ्यास करते रहेंगें।

इस व्यवहार से सशक्त होकर हमें निश्चय करना चाहिए कि चित्त प्रशिक्षण के महात्म्य से हम मार्ग का पालन कर सकंगें चाहें किसी भी प्रकार की कठिन परिस्थितियॉ क्यों न आ जाएँ। यदि हम विश्वास के साथ ऐसा कर पाते हैं, तो यह संकेत है कि हम अभ्यास में अनुभवी हैं,और चाहे कुछ भी हो जाए हम सुखी रहेंगें। इसके अतिरिक्त हमें स्वय पर और अपने अनुभव पर दूसरो के दुख लेना चाहिए। जब दूसरों को शारीरिक और मानसिक बीमारियॉ झेलनी पड़ती हैं अथवा उन्हें कई प्रकार की विरोधात्मक परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है तो हममें उन सब को अपने पर लेने की इच्छा होनी चाहिए। ओर हमें ऐसा बिना किसी आशा और भय के करना चाहिए। 'पर यदि वास्तव में दूसरों के दुख मुझ

पर आ जाएँ। तो मैं क्या करूँगा?' ऐसे विचारों को अपने चित्त से पूरी तरह निकाल देना चाहिए।

अनुभव से तुम अन्यमनस्क होने पर भी अभ्यास कर सकते हो

अनुभवी सवार घोड़ों पर से नहीं गिरते। इसी तरह जब अप्रत्याशित हानि अथवा अकस्मात रूप से कठिनाइयाँ।हम पर गिरती हैं तो यदि खीज के स्थान पर प्रेम और करुणा हमारे अंदर स्वाभाविक रूप से हिलोरें लें – दूसरे शब्दों में यदि हमारे जीवन में असुविधाजनक परिस्थितियों को लाभ कारी रूप काम में लाया जा सके तो यह संकेत है कि हमने चित्त प्रशिक्षण मे कुछ प्राप्त कर लिया है। अतः हमारे लिए निरंतर प्रयासशील होना अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

इस प्रकार के अनुभव चित्त प्रशिक्षण से एक परिचय का संकेत देते हैं : पर वे इसका यह अर्थ नहीं देते कि काम समाप्त हो गया है। क्योंकि यदि ऐसे संकेत मिलने भी लगें तो भी हमें अपने प्रयास में लगे रहना चाहिए, और पूरी तरह से दक्ष और सदा प्रसन्न चित्त होना चाहिए। और तो और जिस चित्त का अभ्यास द्वारा शमन हुआ है और जो शांत है वह स्वाभाविक रूप से बाह्य आचरणों से प्रकट होता है। विभिन्न मुहावरों के अनुसार, 'जब तुम बतखों को देखो ; तो समझो कि पानी निकट ही है' ओर 'बिना आग के धुऑ नहीं होता'। इसी तरह बोधिसत्व बाह्य संकेत से पहचाने जा सकते हैं।

शोत और प्रशांत
तुम्हारी प्रज्ञा को स्पष्ट करेगा
क्लेशो से विमुक्ति
मार्ग पर तुम्हारे विकास को सुस्पष्ट करेगा
तुम्हारी परिपूर्णता होगी प्रकट
स्वप्न में किए पुण्य से
बोधिसत्व होता प्रकट है अपने कार्य से

हममें भी इस प्रकार के चिह्न प्रकट होंगें, पर इसका यह अर्थ नहीं निकलता कि हमारे करने के लिए कुछ और नहीं है।

VI
चित्त प्रशिक्षण की वचनबद्धता

सदैव तीन सामान्य बिंदुओं पर प्रशिक्षण लो

यह आम बिंदु हैं चित्त प्रशिक्षण के व्रतों के प्रति सामंजस्य बनाए रखना, बनावटी न होना और दोहरा मापदंड न अपनाना।

1 चित्त प्रशिक्षण में सामंजस्य हमें बिना किसी पश्चाताप के सुख देना चाहिए और सभी अच्छी वस्तुओ और गुणों का श्रेय दूसरों को देना चाहिए। हमें उनके सभी दुःखों और अनचाही परिस्थितियों को अपने पर ले लेना चाहिए और प्रसन्न भाव से दुःख को स्वीकार करना चाहिए। हमें दूसरों को पूरी सच्चाई से बिना किसी विचार के सुख देते हुए चाहे वे छोटे हों अथवा बड़े उन्हें उनकी पीड़ा से मुक्त करने का प्रयास करना चाहिए खासकर उनकी तरफ जो हमें हानि पहुँचाते हैं। यह बहाना देते हुए कि हम चित्त प्रशिक्षण कर रहे हैं हमें छोटी वचनबद्धता को अनदेखा नहीं करना चाहिए। बिना चित्त प्रशिक्षण को भूले हमें श्रावकयान से लेकर वज्रयान तक की सभी वचनबद्धताओं का सम्मान और अभ्यास करना चाहिए जिसका हमने वचन लिया है उन सभी को जीवन के एक सूत्र में बॉधना चाहिए। यदि हम ऐसा करने में समर्थ होते हैं तो यह महायान के मार्ग में प्रवेश करने का एक बहुत ही अद्वितीय सोपान है। अतः हम पूरी एकाग्रता से सभी वचनों का पलन करें।

2 कृत्रिम न होना अपने दैनिक जीवन में हमारे शब्दों और जिस रूप में हम धर्म का अभ्यास कर रहे हैं दोनों में सामंजस्य होना चाहिए। और तो और हमें यह प्रभाव जताने के लिए कि हम वैरागी हैं इसलिए यह हमारे सहायक हो सकते हैं दूसरों के सामने कार्य करना चाहिए। हमें ऐसे कार्यो से बचना चाहिए जो दूसरों को यह जताने के लिए किए जाएँ कि हम आत्मदृष्टि की भावना से मुक्त हैं जैसे कि पारंपरिक धार्मिक संवेदनाओं के प्रति एक अक्खड आचरण अपनाना अथवा कुष्ठ रोगियों अथवा अन्य छूत की बीमारियों से पीड़ित को छूने का दिखावा करना। हमें ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए जो कदम्प गुरु नहीं करेंगें।

3 दोहरा मापदंड नहीं उदाहरण के लिए हम उन मनुष्यों के प्रति तो सहनशील हों जो हमें हानि पहुँचाएँ पर आत्माओं और असुरों के आक्रमण के प्रति असहनशील हों। हमें निर्धनों और शक्तिशालियों के प्रति शिष्ट आचरण रखना चाहिए। हमें संबंधियों के प्रति मोह और शत्रुओं के प्रति विद्वेश की भावना से बचना चाहिए ओर इस तरह स्वयं को सभी पक्षपात की भावना से अलग रखना चाहिए। पर हम विशेष रूप से निर्धन और साधारण लोग जो इतना महत्व नही रखते का सम्मान करें। पक्षपाते न करें ! सर्वभौमिक रूप से सभी सत्वों के प्रति प्रेम और करुणा होना चाहिए।

अपने व्यवहार को परिवर्तित कर उस पर दृढ़ रहो

आदि काल से हमारी आत्मदृष्टि हमारे संसार में भटकने का कारण रही है; यह हमारे सभी दुखों का मूल है; वास्तव में यही अपराधी है।
दूसरों को अपने से अधिक महत्व पूर्ण मानते हुए हमें अपने आत्म पोषण व्यवहारों का त्याग करना चाहिए और बिना किसी दंभ के कार्य करने का निश्चय कर, काय,वाक और चित्त से उन मित्रों का अनुकरण करना चाहिए जो अपना जीवन उपदेशो के अनुसार जीते हैं। चित्त प्रशिक्षण का अभ्यास सावधानी से होना चाहिए। वह बाह्य आडंबर के साथ नहीं होना चाहिए, इस रूप में कि वह ध्यान आकर्षण करे और प्रसिद्धि निर्मित करे; उसे हमारी आत्मदृष्टि और क्लेशों के लिए आंतरिक प्रतिपक्ष के रूप में कार्य करना चाहिए। बिना किसी को बताए हमें अपने चित्त में परिपक्वता लानी चाहिए।

दुर्बलताओं की चर्चा मत करों

दूसरों की अपंगता की चर्चा मत करों। यदि वे अच्छी तरह देख अथवा चल नहीं पाते, यदि वे बुद्धिमान नहीं अथवा यदि उन्होंने अपने व्रतों का उल्लंघन भी किया हो तो भी हमें उन्हे अंधा, लंगड़ा, मूर्ख कहकर नही पुकारना चाहिए। संक्षेप में हमें ऐसा कुछ नहीं कहना चाहिए जो दूसरों को सुनने में अच्छा न लगे।

दूसरों के कार्यों पर अपना निर्णय मत दो

जब हम दूसरों में कमी देखते हैं विशेष कर जो धर्म में प्रविष्ट हो चुके हैं, तथा एक ही गुरु के शिष्य हैं अथवा वे जो कि सन्यासी के वस्त्रों में देवों ओर मनुष्यों की पूजा में समान रूप से एक अवलंबन विषय हैं, हमें समझना चाहिए कि हमारी समझ की अशुद्धता में ही कहीं कोई कमी है। जब हम आइने में देखते हैं, हम एक मैला चेहरा देखते हैं क्योंकि हमारा अपना चेहरा मैला है। ठीक इसी तरह दूसरों की कमियाँ और कुछ नहीं मात्र देखने की हमारे मन की अशुद्धि है। इस तरह सोचते हुए हमें दूसरों की त्रुटियों की धारणा को त्यागने का प्रयास और

इस प्रकार के व्यवहार का परिष्कार करना चाहिए जिसमें संपूर्ण अस्तित्व, सभी दृश्य वस्तुओं। को शुद्ध रूप में अनुभूत किया जा सके।

अपने प्रबलतम क्लेश पर सबसे प्रथम ध्यान दो

हमें अपनी जॉच कर परीक्षा करनी चाहिए कि हमारे क्लेशों में प्रबलतम कौन सा है। यदि कामना सबसे प्रबल है तो हमें उसके प्रतिपक्ष पर ध्यान करने का प्रयास करना चाहिए जो कि बदसूरती है। यदि कोध सतह पर है तो हमें क्षांति के उपाय का उत्पाद करना चाहिए। यदि स्वभाव से हम अज्ञान और मंद बुद्धि की ओर प्रवृत्त हैं तो हमें प्रज्ञा के अर्जन की ओर परिश्रम करना चाहिए। यदि हम ईर्ष्यालु हैं तो हमें समत्व का विकास करने की ओर प्रवृत्त होना चाहिए। इन क्लेशों के शमन के हमारे प्रयास में हमें अपने सभी धर्म के अभ्यासों को केन्द्रित करना चाहिए। क्योकि यदि हम अपने को स्थूल क्लेशों से मुक्त कर सकते हैं तो अन्य छोटे स्वये अपने आप शमित हो जाएँगें।

फल की आशा करना छोड़ दो

चित्त प्रशिक्षण का आम प्रभाव साधक को आशा और भय से मुक्त करना है। हमें बिना किसी प्रतिफल की आशा के सुख और दुःख के आदान प्रदान का अभ्यास करना चाहिए। उदाहरण के लिए हमें यह आशा नहीं करनी चाहिए कि हमारे अभ्यास के कारण कई अमानवीय प्राणी हमारे चारों ओर जमा होकर हमारे आदेश का पालन कर चमत्कार दिखाएँगें और उनके कहने पर लोग हमारे लिए धन और प्रभाव लाकर हमारी सेवा करेंगें। हमें सभी स्वार्थी विचारों से मुक्त होना चाहिए। जैसे कि अन्य लोगो के लिए कार्य तो करते हों पर अपने वैयक्तिक निर्वाण अथवा एक परिशुद्ध लोक में पुनर्जन्म की इच्छा रखतें हों

विषैला खाना छोड़ दो

कहावत है : स्वार्थी उद्‌देश्य से किए गए कुशल कार्य विषैले भोजन के समान हैं। विषैला भोजन बहुत स्वादिष्ट प्रतीत हो सकता है और स्वादिष्ट भी हो सकता है पर वह शीघ्र ही निश्चित मृत्यु की ओर ले जाता है।

शत्रु के प्रति यह सोचना कि उससे घृणा की जानी चाहिए, मित्र के प्रति यह सोचना कि इससे प्रेम किया जाना चाहिए, दूसरों के सुख और सौभाग्य को लेकर ईर्ष्यालु होना; इन सब का मूल कारण आत्मदृष्टि है। और कुशल कार्य जिसमें आत्मदृष्टि की भावना हो जो कि आत्म को ठोस और वास्तविक मानने से जन्म लेता है विष में परिवर्तित हो जाते हैं। हमें आत्म केन्द्रित होने की सभी भावना को छोड़ देना चाहिए।

कर्तव्य भावना के कारण संकीर्ण मत बनो

अपने माता पिता की स्मृति के प्रति निष्ठा बरतते हुए लोग एक दूसरे का उपकार करते हैं अथवा अपने पूर्वजों के शत्रुओं के विरुद्ध कुलबैर रखते हैं। हमें इस प्रकार के पूर्वाग्रह को स्वयं पर हावी होने देना नहीं चाहिए।

हमें अपशब्दों का प्रत्युत्तर अपशब्दों द्वारा नहीं देना चाहिए

यदि लोग हमसे यह कहें कि, 'तुम एक अच्छे साधक नहीं हो, तुम्हारे व्रत व्यर्थ हैं,' तो प्रतिकिया में हमें उनकी कमियों की ओर इशारा नहीं करना चाहिए, उदाहरण के लिए एक अंधे व्यक्ति से यह कहना कि वह अंधा है, अथवा एक अपंग व्यक्ति से कहे कि वह लंगड़ा है। यदि हम इस प्रकार का व्यवहार करें तो दोनों ही पक्ष रुष्ट होंगें। अतः हम ऐसा एक शब्द भी न कहें जो दूसरों को हानि पहुँचाए अथवा उन्हें दु:खी करे। जब कार्य ठीक से नहीं होते तो हमें किसी और को दोषी नहीं ठहराना चाहिए।

घात लगाकर प्रतीक्षा नहीं करना चाहिए

इस संदर्भ में घात लगाने का अर्थ है दूसरों ने हमें जो नुकसान पहुँचाया है उसे याद करना और एक ऐसे कमज़ोर क्षण की प्रतीक्षा करना जब हम शक्तिशालियों की सहायता लेकर अथवा यहाँ तक कि जादू टोने तक की मदद लेकर प्रत्याकमण कर सकते हैं। हमें ऐसे किन्हीं भी विचारों का परित्याग कर देना चाहिए।

दुर्बलताओं पर चोट मत करों

दूसरों की दुर्बलताओं पर चोट मत करो अथवा ऐसा कुछ मत करो जिससे उन्हें कष्ट पहुँचे। इसी तरह विनाशकारी मंत्रों का जाप मत करो जो अमानवीय सत्वों को हानि पहुँचाएँ।

चुरू के भार को बैल की पीठ पर मत रखों

इसका अर्थ है कि हमें अपने पर पड़ने वाली किसी चोट अथवा दोष को दूसरों पर गिरने नहीं देना चाहिए। बैल चुरू के बौझ को नहीं ढो सकता। और तो और हमारा प्रयास गरीबो और दुर्बलों को हानि न पहुँचाने का, अन्य लोगों की तुलना में उन पर और भारी कर का बोझा न डालने इत्यादि का होना चाहिए। ऐसे सभी बुरे कार्यों को पूरी तरह से त्याग देना चाहिए।

छिपी नीयत से प्रशंसा मत करो

उदाहरण के लिए यदि हमारे पास अन्य लोगो के समान ही कोई संपत्ति हो तो हमें यह कहते हुए कि, 'आप अपनी दया के लिए प्रसिद्ध हैं अथवा,: उदार होकर आप अत्यधिक पुण्य संभार कर सकते हैं। हमें उनकी प्रशंसा में इस तरह की चापलूसी नहीं करनी चाहिए कि वे अपना हिस्सा हमें दें दें। वास्तव में हमें दूसरो को प्रसन्न करने का कोई प्रयास नहीं करना चाहिए ताकि वे हमें धन दें। ऐसी सभी बातो का परित्याग करना चाहिए।

उपाय का दुरुपयोग मत करो

हम उपाय का दुरुपयोग तब करते हैं जब हम निजी सुख की इच्छा के लिए अथवा इस बात के लिए कि दूसरे हमारे लिए कहें कि हम सहनशील और प्रेम भरे बोधिसत्व हैं दूसरों के दुर्भाग्य को स्वयं पर लेते हैं और इस तरह अपने लिए एक यश अर्जित कर लेते हैं। हमें स्वयं को ऐसे सभी उद्देश्यों से मुक्त कर लेना चाहिए और इन कारणों से कभी भी दूसरों के दुर्भाग्य को स्वयं पर नहीं लेना चाहिए।

इस प्रकार के आचरण का एक और उदाहरण किसी रोग अथवा किसी भूत अथवा आत्मा के भय से मुक्त होने के लिए चित्त प्रशिक्षण के अभ्यास की इच्छा करना है। यह रौद्र मंत्रों द्वारा आत्माओं को दंडित करने के लिए बिलकुल जादू टोने का अभ्यास करने जैसा है; यह एक ऐसी वस्तु है जिसे बिलकुल छोड़ देना चाहिए। हमें इसके दुष्प्रभावों को दूर करने के लिए चित्त प्रशिक्षण को मात्र जादू टोने के स्तर तक गिराना नहीं चाहिए जिसे हम एक हथियार के समान दुष्प्रभावों को दूर करने के लिए काम मे ला सकें। बुरी आत्माएँ और भूत दूसरों को नुकसान पहुँचाती हैं क्योकि वे भ्रांत होती हैं। हमें चित्त प्रशिक्षण का अभ्यास उनके विरुद्ध नही अपितु उन्हें उनके दुष्कर्मों से विमुक्त करने के लिए करना चाहिए। जब वे बाधाएँ रचते हैं,तो हमें करुणा के साथ *च्छेदक* की साधना करना चाहिए; फिर वे हमें हानि नहीं पहुँचाएँगें। हमारी साधना केवल हमारे क्लेशों के लिए ही प्रतिपक्ष होना चाहिए।

किसी देव को असुर के स्तर तक नीचे मत लाओ

सांसारिक लोग अपने धर्म को व्यापार में सफलता के लिए, शक्ति और संपन्नता की परिस्थितियों के लिए उपयोग में लाते हैं; पर यदि वे बीमार पड़ जाएँ, अपनी पदवी खो दें इत्यादि तो वे सोचते हैं कि उनके ईश्वर उनसे अप्रसन्न हैं और उन्हें असुर जैसा मानने लगते हैं।

यदि चित्त प्रशिक्षण से हम गर्वीले और आत्मश्लाघी हो जाएँ। तो वह वैसे ही होगा जैसे गांपोपा ने एक बार कहा था : धर्म का अभ्यास यदि उचित रुप से न किया जाए तो वह हमें निम्न धरातल पर ले आएगा। यदि हम आडम्बरी और मिथ्याभिमानी हो जाएँ, तो हम निश्चित रूप से धर्म का पालन नहीं कर सकते। हमारे अहंकार के कारण चित्त प्रशिक्षण हमें शांत करने के स्थान पर हमें और कठोर ओर ज़िद्दी बना देगा। हम इतने अहंकारी हो जाएँगें कि यदि हम बुद्ध को भी हवा में उड़ता देखें अथवा किसी को इतना दुःख पाता देखें कि उसकी अंतड़ियाँ बाहर निकली हों, तो हममें न ही बुद्ध के गुणों को देखकर भक्ति भावना जागेगी और न ही दुखियों को देखकर करुणा जनित होगी। धर्ग का वास्तविक रूप निरर्थक हो जाएगा। यदि शत्रु पूर्वी द्वार पर हों तो

सैनिको को पश्चिम द्वार पर तैनात करने से कोई लाभ नहीं होगा। यदि हमें जिगर की शिकायत है तो हमें जिगर की उचित दवाई लेना चाहिए। यदि हमें बुखार हो तो हमें उसका उचित उपचार करना चाहिए। जो दवा हम ले रहे हैं यदि वह हमारे रोग के अनुकूल नही है तो हमारी हालत और बिगड़ जाएगी। ठीक इसी तरह हमें इन शिक्षाओं का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए ताकि वे हमारी आत्मदृष्टि के प्रतिपक्ष बन सकें। सबके प्रति हमें स्वयं को सबसे निम्न कोटि का सेवक मानना चाहिए और सबसे निचला स्थान ग्रहण करना चाहिए। हमें विनम्र होने और आत्म विस्मृति के लिए वास्तव मे कड़ा प्रयास करना चाहिए।

दुःख से लाभ मत उठाओं

यदि किसी संबंधी अथवा मित्र की मृत्यु पर यदि हम उनकी संपत्ति, खाना, धन और किताबें प्राप्त करने के लिए हर संभव कोशिश करें, यदि हमारे सहायता करने वाले बीमार पड़ जाऍं अथवा उनकी मृत्यु हो जाए और यदि हम इस आशा में कि हमें प्रतिफल में कुछ प्राप्त होगा उनके अंतिम सस्कार करने की आशा में उनके घर जाऍं, अथवा अपने ही स्तर के किसी साधक की मृत्यु पर हम प्रसन्न हों कि हमारा अब कोई प्रतिस्पर्धी नहीं है, अथवा किसी शत्रु की मृत्यु पर यह सोचना कि अब हमें किसी से कोई डर नहीं है,तो हम वास्तव में दूसरों के दुखों से लाभ उठाऍंगें। हमें ऐसा नहीं करना चाहिए।

VII
चित्त प्रशिक्षण के मार्ग दर्शक

चित्त प्रशिक्षण को स्वयं पर लागू करने, हमारी करुणा और बोधिचित्त को सुदृढ़ कर उसे और विकसित करने के संबंध में यहॉ कुछ और सलाह दिए जा रहे हैं।

सभी केवल एक उद्देश्य से करो

हमें परोपकार की भावना से सोचना चाहिए। उदाहरण के लिए जहॉ तक हमारे खाने पीने तथा हमारी वेश भूषा का संबंध है जब हमें कुछ स्वादिष्ट वस्तु खाने के लिए दी जाती है, तो हमें सोचना चाहिए,'सभी सत्वों को भी अच्छे भोजन का आनंद मिले ; तथा मुझे उन सभी लोगों के साथ इस भोजन को बॉटने का अवसर मिले जो भूखे हैं।' ठीक इसी तरह जब हमें अच्छे कपड़े मिलते हैं, तो हम यह सोचें कि,' सभी को इस प्रकार के अच्छे कपड़े मिलें।

सभी कठिन परिस्थितियों में केवल एक ही इलाज का प्रयोग करें

चित्त प्रशिक्षण के दौरान जब हम बीमार पड़ते हैं अथवा नकारात्मक शक्तियों के शिकार होते हैं, जब हम इतने लोकप्रिय नहीं होते तथा बदनामी से पीड़ित होते हैं, जब हम में प्रबल भावनाओं का बाहुल्य होता है और हम चित्त प्रशिक्षण की इच्छा खो देते हैं तो ऐसे समय हमें सोचना चाहिए कि इस संसार में कई लोग ऐसे हैं जो इसी तरह पीडित हैं जिनके आचरण और उपदेशों में अंतर है। चाहे हम सिद्धांतों अथवा सद्गुणों के विकास के उपाय को समझाएँ पर कोई भी सुनना नहीं चाहेगा और हमारे शब्द बहरे कानों में पड़ेगें। दूसरी ओर लोग बिना सिखाए बहुत ही स्वाभाविक रूप से झूठ बोलना और चोरी करना प्रारंभ कर देते हैं। उनके कार्य और उनकी इच्छाओं में संघर्ष होता हैं – वे वे संसार में अथवा निम्न लोकों के इलावा और कहॉ जन्म ले सकते हैं? इसलिए हमें उनके प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए ओर उनकी सभी कमियों को स्वयं पर लेकर हमें प्रार्थना करनी चाहिए कि उनके नकारात्मक कार्य समाप्त हो जाएँ और वे विमुक्तता के मार्ग से प्रारंभ करें। हमें प्रार्थना करनी चाहिए कि वे संसार से थक जाएँ और उससे विमुख होने की कामना करें,कि उनमें बोधिचित्तोत्पाद हो और उनके आलस्य और धर्म के प्रति विमुखता के सभी प्रभाव हम पर पड़ें। दूसरे शब्दों में हमें बुराई के बदले अच्छाई के आदान प्रदान का अभ्यास करना चाहिए।

दो चीज़ें की जानी चाहिए, प्रारंभ में और समाप्ति पर

1 प्रातःकाल ऑख खुलने पर हमें निम्नलिखित व्रत लेना चाहिए :'आज पूरे दिन मैं बोधचित्त का स्मरण रखूँगां। खाते समय, तैय्यार होते, ध्यान करते हुए जहाँ कहीं भी मैं जाऊँ मॅ निरंतर इसका अभ्यास करूँगां। यदि यह मेरे चित्त से फिसल जाए तो मैं स्वयं को स्मरण दिलाऊँगां। इस के प्रति जागरूकता रखते हुए मैं अपने आप को क्रोध, कामना अथवा अज्ञान की स्थितियों में भटकने नहीं दूँगां। हमें इस व्रत का पालन करने का पूरा प्रयास करना चाहिए और 2 रात को सोने से पूर्व हमें स्वयं का परीक्षण करना चाहिए कि हमने बोधिचित्त का कितना अर्जन किया है, हमने दूसरों की कितनी सहायता की है और क्या हमारे सभी कार्य शिक्षा के अनुसार हैं।

यदि हम पाएँ कि हमने शिक्षाओं के विपरीत कार्य किया है तो हमें यह चिंतन करना चाहिए कि यद्यपि हम बुद्ध धर्म में प्रवेश कर चुके हैं और अपने गुरु से महायान की शिक्षा ग्रहण कर चुके हैं, पर अब भी हम उन्हें अभ्यास में लाने में असमर्थ हैं। इसका कारण है कि अनगिनत जन्मों में हमने सिद्धांतों से मुँह मोड़ा है। यदि हम इसी तरह बने रहें तो हमारे संसार और निम्न लोको में भटकने का कोई अंत नहीं। प्रतिदिन की ग़लतियों को स्वीकार करते और यह निश्चय करते कि अगले दिन से चौबीस घंटों, अथवा एक महीने अथवा कम से कम एक साल के अंदर हममें सुधार के कुछ संकेत होंगे हमें इस तरह अपने आप को स्मरण दिलाते रहना चाहिए। हमें अपने आप को लौह रूप से मज़बूत करना चाहिए कि कमियों को छोड़ने से घबराएँ नहीं। यदि दिन के दौरान हमारे कार्य शिक्षाओं के विपरीत न हुए हों और हमने एक परोपकारी व्यवहार बनाए रखा हो तो हमें यह सोचते हुए सुखी होना चाहिए,' आज का दिन एक लाभकारी दिन रहा है; मेरे गुरु की शिक्षा मुझे याद रही कि उनकी इच्छाओं को पूरा किया जाए। कल मैं आज से बेहतर करूँगां और परसों उससे भी बेहतर।' इसी तरह हमारे बोधिचित्त के विकास को सुनिश्चित करना चाहिए।

दोनों में से जो भी हो जाए उसे सहन करो

त्रिरत्नो में विश्वास और उदारता के अभ्यास से ऐसा हो सकता है कि कार्मिक फल के द्वारा हम धनी हो जाएँ, समाज में एक उंूची पदवी प्राप्त करें आदि आदि। इससे हम यह सोच सकते हैं कि, 'मैं धनवान हूँ, मैं महत्वपूर्ण हूँ, मैं सर्वोत्तम हूँ, मैं सबसे श्रेष्ट बन गया हूँ।' यदि हम साधकों में इस प्रकार का अहंकार आ जाए तो हमारी इस जीवन के प्रति ग्राह्यता बढ़ जाएगी और हमारे ह्रदयों में एक दानव का प्रवेश हो जाएगा। पर दूसरी ओर यदि हम सुख, संपत्ति और अपने प्रभाव का आनंद बिना किसी अहंकार के उठा सकें तो हम समझ पाऍगें कि वह माया, सारहीन स्वप्न के अतिरिक्त और कुछ नहीं है और यह

सभी एक दिन समाप्त हो जाएगा। जैसे कि सभी संस्कृत वस्तुओं विषय में कहा गया है कि, 'जो भी संचित किया गया है, उसे काम में लाया जाएगा, जिसे खड़ा किया गया हो वह गिरेगा; जो जन्मा है वह मरेगा; जो साथ में जुड़ा है वह पृथक हो जाएगा।'

'हमें स्वयं से यह कहना चाहिए कि 'कौन जानता है कि कल शायद मुझे इन सब को अलविदा कहना होगा। अतः मै अपने गुरुओं और त्रिरत्नों को अपना सर्वोत्तम संतोष और संपत्ति अर्पित करूँगां।' वे इसे आनंद से ग्रहण करें और मुझे आर्शीवाद दें ताकि मेरे मार्ग में कोई रोड़े न हों। यह सभी कुछ एक सुखद स्वप्न है पर सभी सत्व मुझ जैसा बल्कि मुझ से भी अधिक सुख अनुभव करें।'

दूसरी ओर जब हम इतनी दयनीय स्थिति में होते हैं कि हम अभ्यास भी नहीं कर सकते और हममें खीज, लड़ाई और सब से झगडा करने की प्रबल भावनाएँ होती हैं तो हमें सोचना चाहिए कि, 'सब कुछ एक माया है, इसलिए मैं अपने आप को भावनाओं के प्रवाह में बहने नहीं दूंगां। मै कायर नहीं हूँगां! मैं अन्य सत्वों की दुर्बलता, गरीबी, और बीमारी को अपने कंधों पर लूँगां।' संक्षेप में यदि कहा जाए तो हममें यह सोचने की क्षमता होनी चाहिए कि बशर्ते हममें बहुमूल्य बोधिचित्त की भावना कम न हो तो किसे चिंता है यदि हमें निम्न लोकों में जाना पड़े, तो भी किसे चिंता है यदि हम अपनी संपत्ति खो दें? चाहे कुछ भी हो जाए ऐसे भिखारी की तरह जिसके पास बहुमूल्य मणि सदृश्य बोधिचित्त है उसे नहीं छोड़गें।

चाहे तुम्हें जान की कीमत देनी पड़े, पर दोनों को बचाओ

साधारणतया इसका संबंध श्रावकयान, महायान और वज्रयान के व्रतों से है और विशिष्ट रूप से चित्त प्रशिक्षण के खास व्रतों से। चित्त प्रशिक्षण के व्रत हैं: दूसरों को विजय और लाभ दो और विशेषकर अपने शत्रुओं की सभी हानियॉ और असफलताओं को अपने पर ले लो। यदि हम इसी तरह करें तो चित्त प्रशिक्षण का प्रभाव पड़ेगा। दूसरी ओर यदि हम इन दोनो व्रतो के अभ्यास में असफल रहें,तो न ही हमें इस जीवन में सुख प्राप्त करने का और एक बेहतर जीवन प्राप्त करने का और मनुष्य लोक अथवा देव लोक में पुनर्जन्म प्रांप्त करने का लघु कालीन लाभ होगा और न ही विशुद्ध क्षेत्र में पुनर्जन्म का दीर्घकालीन लाभ होगा। इसलिए किसी भी कीमत पर हमें इन व्रतों का पालन करना होगा ठीक उसी तरह जिस तरह जंगल से गुजरते हुए हम अपने नेत्रों को कंटक से सुरक्षित रखते हैं।

अपने आप को तीन कठिन अनुशासनों में प्रशिक्षित करो

यह तीन अभ्यास जागरूकता, निकास तथा प्रवाह का अवरोध है।

इनमें से जहॉ तक पहले जागरूकता के कठिन अभ्यास का संबंध है यह आवश्यक है कि जैसे ही क्लेशों का जन्म हों हम उन्हें पहचाने और प्रारंभ में इनके विषय में पर्याप्त पहचान करना अत्यंत कठिन है। पर जब नकारात्मक भावनाओं का जन्म होता है तो हमें उनकी पहचान क्रोध, कामना अथवा मूर्खता के रूप में करना चाहिए।पर यदि भावनाओं की पहचान हो भी जाए तो भीं किसी प्रतिकारक के द्वारा उनको दूर करना सहज नहीं है। उदाहरण के लिए यदि कोई अनियत्रिंत प्रबल भावना हम पर हावी हो जाए जिसकी प्रबल शक्ति के कारण हम अपने आप को असहाय पाएँ पर फिर भी हमें उसका सामना करना चाहिए और उस पर प्रश्न उठाना चाहिए कि उसके शस्त्र कहॉ हें?। हम पाएँगें कि भावनाएँ अपने आप में सारहीन विचार हैं, प्रकृति से शून्य हैं; वे न तो कहीं से आती हैं और न ही कहीं जाती हैं और न ही वे कहीं रहती हैं।' इस का अर्थ हुआ कि प्रतिपक्षों के वर्णन के आधार पर क्लेशों का उसी प्रकार उन्मूलन हो सकता है जिस प्रकार आकाश में उड़ता पक्षी : कोई निशान नहीं छोड़ता। यह वह अभ्यास हैं जिनका हम वास्तव में प्रयास करते हैं।

तीन आवश्यक तत्वों का आश्रय ग्रहण करो

धर्म निष्पादन के लिए तीन आवश्यक तत्व हैं : एक योग्य शिक्षक से भेंट, उनकी शिक्षाओं की प्राप्ति, सही व्यवहार का परिष्कार करना, और अंततः आवश्यक भौतिक परिस्थितियों का होना।

यदि हम सच्चे गुरु का अनुगमन नहीं करते तो हमें कभी यह पता न लगेगा कि शिक्षा का अभ्यास किस प्रकार किया जाए। यदि बुद्ध ने धर्म चक्र प्रवर्तन न किया होता तो हम नहीं जानते कि हमें किस प्रकार के कार्य करने चाहिए और किस प्रकार के कार्यों से बचना चाहिए। हम जिन्हें बुद्ध से मिलने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है विमुक्ति के मार्ग की साधना किस तरह कर सकते हैं यदि हम किसी गुरु का अनुगमन न करें? और हम किस तरह उन मार्गों की पहचान कर सकत हैं जो कि भ्रमात्मक और हीन हैं? और तो और जिस तरह हम सख्त चमड़े को नरम और लचीला बनााने के लिए तेल का प्रयोग करते हैं, इसी तरह हमें इन उपदेशों का अभ्यास सही रूप से क्लेशों से व्याकुल हुए बिना शांत और विनीत भाव से करना चाहिए। अंत में कामलोक में रहते हुए हमें यदि पेट भरने के लिए भोजन न हो और हवा से बचने के लिए कपड़े न हों तो धर्म का अभ्यास असंभव है।

हमारे पास यदि यह तीन आवश्यक तत्व संपूर्ण हैं तो हमें इस विचार से प्रसन्न होना चाहिए कि शिक्षाओं की साधना के लिए जो कुछ भी आवश्यक है वह सब कुछ हमारे पास है। यह ऐसा ही हे मानों एक यदि पहाड़ी यात्रा के

लिए हमारे पास एक अच्छा घोड़ा है – रास्ता बिना किसी कठिनाई के होगा। और हमें यह प्रार्थना करनी चाहिए कि सभी सत्व भी ठीक इसी तरह भाग्यवान हों।

पर यदि हममें यह आवश्यक तत्व न हों तो हमें चिंतन करना चाहिए कि यद्यपि हमने बौद्ध धर्म में प्रवेश कर लिया है और हमने बहुत अधिक शिक्षाएँ और निर्देश प्राप्त की हैं पर फिर भी हमारे पास अभ्यास के लिए अनुकूल परिस्थितियों का अभाव है।

वास्तव में इस कमी के कारण कई शिष्य उचित अभ्यास कर पाने में असमर्थ हैं। उनके पास तथाकथित 'अच्छे कर्म हैं जो बिगड़ रहे हैं'। जैसा कि पहले समझाया गया था, 'वृद्ध योगी धनी बन रहे हैं; बूढ़े योगी विवाह कर रहे हैं', हमें ऐसे लोगों को देख दया आनी चाहिए और हमें ह्रदय से प्रार्थना करनी चाहिए कि उनके अनुकूल परिस्थितियों के न होने के कारण उनके फल हम पर परिपक्व हों और परिणाम स्वरूप उनकी परिस्थितियॉं सुधर जाएँ।

तीन उन वस्तुओं पर ध्यान करो जिनका क्षय न हो

ये हैं भक्ति, उत्साह और बोधिचित्त

महायान में सभी गुंणो का आधार गुरु के प्रति भक्ति है। यदि स्वयं बुद्ध भी हमारे समक्ष प्रकट हो जाएँ और हममें उनके गुणों को देखने की भक्ति न हो, तो उनका आशीर्वाद हममें प्रवेश न कर पाएगा। बुद्ध के संबंधी देवदत्त और लेकपे कर्म उन्हें बुद्धत्व प्राप्त सत्व के रूप में देखने में असमर्थ रहे। उन्होने बुद्ध के सभी कर्मों को गलत समझा और उसकी आलोचना की और स्वयं को ईर्ष्या के आधीन करने के कारण उनका पुनर्जन्म नरक लोक में हुआ। यदि हममें अपने गुरु के सभी कर्मों को सकारात्मक रूप से देखने का उत्कृष्ट विश्वास और भक्ति है – फिर चाहे यदि वह महान व्यक्ति न भी हो – तब भी हममे अनायास ही अनुभूति की प्रज्ञा उत्पन्न होगी जैसी की? षड़प्ररुदित मे हुई थी जो गुरु के प्रति अपनी भक्ति के कारण शून्य की प्रकृति का अनुभव कर पाए थे। इस तरह हमारी भक्ति ऐसी वस्तु है जिसका क्षय हम कभी न होने दें।

यह चित्त प्रशिक्षण महायान का सार है। यह वह मक्खन है जो सिद्धांत के दूध मे से आता है। बुद्ध द्वारा दिए गए अस्सी हज़ार शिक्षाओं में से यदि हम केवल बोधिचित्त की साधना कर लें तो वह पर्याप्त है। वास्तव में यह एक अनिवार्य दवा के समान है; यह एक ऐसी वस्तु है जिसके बिना हम काम नहीं चला सकते। यह सभी शिक्षाओं का आसवित सार है। निस्संदेह इसका श्रवण सौभाग्यदायी है और जो शिक्षक इसे समझाता हे उसकी करुणा महान है, क्योंकि इसका महात्म्य अकल्पनीय है। इसके विपरीत यदि अपने जीवन को दीर्घ कालीन बनाने के लिए अथवा अपने शत्रुओं अथवा डाकुओं इत्यादि पर विजय

प्राप्त करने के लिए हम चार तांत्रिक प्रकार्यों के निर्देशों का प्रयोग करें तो हम मात्र वर्तमान जीवन के लिए ही कार्य करेंगें।

पर बोधिचित्त की यह अनमोल शिक्षा ! यदि हम इसका अनुभव अपने चित्त में किंचित मात्र ही करें ! एक क्षण का नकारात्मक विचार अनगिनत जीवन कालों के लिए दु:ख लाएगा। इसके विपरीत एक क्षण का बोधिचित्त अनगिनत कल्पों के दुष्कर्मों के प्रभाव को समाप्त कर देगा। बोधिचित्त के एक विचार में सभी पुण्य संभार और सभी शुद्धीकरण के कार्य समाए हैं। इस व्यवहार पर आधारित कोई भी कार्य महायान के सागर जैसे प्रकार्य का एक अंग है। अतः हमें आनंद और उत्साह से बोधिचित्त का अभ्यास करना चाहिए और इसे कभी भी कम न होने देना चाहिए।
बोधिचित्त का आदी होने का अर्थ एक उपवन को बिना घास फूस, कीड़े मकोड़े, लकड़ी और मिट्टी के ढेले के साफ रखने के समान है। आइए महायान और अन्य यानों के सभी गुणो को साथ लाकर ताकि हम पात्र के समान हों जिसमें क्रमशः दाना भरा जाए अथवा बूँदों से भरा हूआ घड़े हम इसका अभ्यास करें। चाहे हम प्रतिमोक्ष, बोधिसत्व प्रशिक्षण अथवा मंत्रयान के उत्पाद और समाप्ति के स्तरों का अभ्यास करें हमें अपने बोधिचित्त के व्रतों के अवलंब के रूप में कार्य करना चाहिए। यदि हम मंत्रयान का अभ्यास करें तो भी उसे एक बोधिसत्व के रूप में हमारी प्रतिबद्धता को बनाए रखना और पुष्ट करना होगा।

हम जो कुछ भी करें, शिक्षाओं का श्रवण, उन पर चिंतन अथवा ध्यान हमें इन सब को अपने प्रशिक्षण में एक सहायक के रूप मे लेना चाहिए। यदि हम बोधिचित्त का प्रयोग सभी को मार्ग पर लाने के रूप में कर सकें तो एक संपूर्ण चित्त की अवस्था ओर सकारात्मक विचारों का विकास अभूतपूर्व ढंग से होगा। प्रतिकारक के उपयोग से हम अब तक जो भी नकारात्मक भावनाऍ पैदा हुई हैं उन सबको उलटा पाऍगें। उस तरह से हम बोधिचित्त को अपने सदा साथ रहने वाले मित्र की तरह रख पाऍगें।

अपृथक रूप से तीन वस्तुओं को बनाए रखो

हमारे काय, वाक् ओर चित्त को सदैव सकारात्मक कार्यों में लगे रहना चाहिए। जब हम कुशल कार्य कर रहे हैं जैसे साष्टांग वन्दना, प्रदक्षिणा इत्यादि, तो हमारे वाक् और चित्त और हमारी शारीरिक चेष्टाओं में सामजंस्य होना चाहिए। जब हम वाक् के सकारात्मक कार्यों का संभार करें उदाहरण के लिए पाठ, तो हमारा शरीर और हमारे चित्त को भी वहॉ उपस्थित होना चाहिए। उदाहरण के लिए साष्टांग वन्दना, प्रदक्षिणा आदि करते समय यदि हम व्यर्थ की बातें करते रहें अथवा कई नकारात्मक भावनाऍ पालते रहें तो यह प्रदूषित भोजन खाने के

समान है। अतः कुशल कार्य करते समय हमारे काय, वाक् और चित्त को अपृथक रूप से एक होकर कार्य करना चाहिए

बिना पक्षपात के हर क्षेत्र में प्रशिक्षण ग्रहण करो
तुम्हारा प्रशिक्षण गहन और व्यापक हो

हमें बिना पक्षपात के चित्त प्रशिक्षण का अभ्यास करना चाहिए और हर वस्तु के संबंध में चाहे वह जड़ हो अथवा चेतन बिना किसी को चुने हमें अभ्यास करना चाहिए ताकि जो भी विचार उत्पन्न हों वे चित्त प्रशिक्षण में मार्ग का कार्य करें न कि बाधाओं का अवसर बनकर आएँ। यह ऐसा न हो जिसके विषय में हम केवल बात ही करें अपितु हमारे ह्रदय में ऐसा गहन बैठ जाए तथा हम यथार्थ में उसे आत्मसात करें।

जो वर्जनीय हो उस पर सदा ध्यान करो

हमें अविरत रूप से कठिनाइयों पर ध्यान करना चाहिए जिनसे हम बच नहीं सकतें। उदाहरण के लिए लोगो के प्रति जो हमें हानि पहुँचाते हैं, जो हमसे प्रतिस्पर्धा की भावना रखते हैं, जो एक क्षण में मैत्री भाव रखते हैं पर जो बिना किसी कारण अचानक हमारे विरुद्ध हो जाते हैं अथवा उन लोगों के प्रति जिन्हें हम अपने (कर्मो के कारण) बिना किसी कारणवश पसंद नहीं करते उनके प्रति और भी गहनता से हमें बोधिचित्त का उत्पाद करना चाहिए विशेषकर जब यह कठिन हों।

हमें अपने से बड़ों, माता पिता और गुरुओ की सेवा और सम्मान करना चाहिए। जैसा गुरु पद्मसंभव ने कहा, 'अपने से बड़ों के लिए दुःख का कारण मत बनों; सम्मान के साथ उनकी सेवा करो।' यदि हम जिन्हें मदद की आवश्यकता है उनकी सहायता करते हैं तो हम बोधिसत्वों के मार्ग पर चल रहे हैं। इस व्यवहार के विरुद्ध जो भी हो हमें उसका त्याग कर देना चाहिए।

बाह्य तत्वों पर निर्भर मत रहो

जब हमारे पास पर्याप्त मात्रा में खाना और कपड़ा हो, और हमें वह सब कुछ मिले जो हम चाहते हों और हमें किसी प्रकार की कोई परेशानी नहीं हो तो हमें इन लाभों के मोह में नहीं पड़ना चाहिए और न ही इन पर निर्भर होना चाहिए। इसके विपरीत जब हम ऐसी अच्छी परिस्थितियों का लाभ नहीं उठा पाते और जब सब कुछ बुरा होता है तब हमें ऐयी परिस्थिति को अपने साहस की प्रेरणा बना लेनी चाहिए और उन्हें बोधिसत्व मार्ग समझ लेना चाहिए। जब परिस्थितियाँ कठिन हों तो हमें हार नहीं माननी चाहिए बल्कि इसके विपरीत यही समय है जब अपने सारे अनुभवों को इस मार्ग पर लाते हुए हम उभय बोधिचित्त का अभ्यास करें

इस समय जो महत्वपूर्ण है उसे करो

हमारे कई पूर्व जन्मों में हमने कई विभिन्न स्वरूप धारण किए होंगें। हम धनवान रहे हैं। हमने अपने शत्रुओं से मार खाई है और सब कुछ खोये हैं। हमने देवताओ के सभी सुखों का अनुभव किया है। हम राजनैतिक दमन के पीडित रहे हैं। हम कोढ़ी रहे हैं अथवा किसी अन्य बीमारी का शिकार हुए हैं। सुख और दुःख के इन अनुभवों ने हमें कुछ नहीं दिया है। पर अब इस वर्तमान जीवन में हम बुद्ध के दिखाए गए मार्ग पर चल पड़े हैं, हम बहुत विद्वान और प्रतिष्ठित आध्यात्मिक गुरुओं से मिले हैं; इस बार हमें ऐसी परिस्थितियों को सार्थक बनाना है और जो महत्वपूर्ण हो वह करना है।

यदि कोई व्यापारी एक रत्न द्वीप की यात्रा के बाद बिना रत्न लिए खाली हाथ लौटे तो वह लोगों को मुँह दिखाने में लज्जा का अनुभव करेगा। हमारे लिए भी ऐसा ही है जिनके पास इस समय अभ्यास के लिए ऐसी अनुकूल परिस्थितियाँ हैं। यदि हम सच्चे बोधिचित्त को जन्म दे सकते हैं तो इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि यदि हम निर्धन,अनजाने और बिना किसी महत्व के हों।

धर्म के दो अंग हैं : व्याख्या और अभ्यास। व्याख्या केवल मुँह का कार्य है ओर ऐसे कई हैं जो कि व्याख्यायित शिक्षा का अभ्यास नहीं करते। जैसी कि कहावत है; 'बहुतों ने सिद्धात को सुना है पर वे बहुत थोड़े हैं जो उसे कियान्वित करते हैं। जिन लोगों ने थोड़ा अभ्यास किया है वे भी हट जाते हैं और खो जाते हैं।' जहाँ तक धर्म का संबंध है शिक्षा और उसके बारे में बात करने से कहीं अधिक महत्वपूर्ण उसकी साधना है; धर्म कुछ ऐसा है जिसे हमे वास्तव मे करना है। और तो और हम करोड़ो मंत्रो का जाप कर सकते हैं और जितना चाहे अच्छे कार्य कर सकते हैं पर यदि हमारा चित्त अन्यमनस्क है तो इससे कोई लाभ नहीं होगा, शिक्षा से हमें कोई लाभ नही मिलेगा और बोधिचित्त को विकसित होने का काई अवसर नही मिलेगा। अतः सभी अभ्यासों से बढ़कर हम बोधिचित्त को ग्रहण करें।

एक देवता अवलोकितेश्वर सभी बुद्धों के साकार हैं
एक मंत्र, षड़ाक्षर सभी मंत्रों का साकार है
एक धर्म, बोधिचित्त विकास और समाप्ति के सभी स्तरों का साकार है
जो सब को मुक्त करे उसे जानकर करो जाप षड़ाक्षरी मंत्र का?

इस तरह बोधिचित्त सभी साधनाओं में प्रमुख है; इसके अतिरिक्त स्वयं पुस्तकों से पढ़कर और अपनी बुद्धि के आधार पर पालन करने से बेहतर अपने गुरु से मिली शिक्षा का एकाग्रता से पालन करना हैं। स्वर्ण और हीरे को जितना मांझा और तराशा जाए वह उतना ही अधिक शुद्ध और अनुपात में अधिक मूल्यवान हो जाता है। इसी तरह अपने गुरु से मिली शिक्षा के श्रमपूर्वक अभ्यास से उनके विषय में हमारी समझ और अधिक गहन हो जाएगी। बुद्ध ने स्वयं

कहा, 'मेरे शब्दों को स्वर्ण के समान मानो, मेरे उपदेशों को काटकर, पिघलाकर, और मांजकर उनका अच्छी तरह परीक्षण करों क्योंकि तुम्हें उन्हें मेरे प्रति श्रद्धा के कारण अपनाना नहीं है।' जिस तरह स्वर्ण को पिघलाया और मांजा जाता है उसी तरह बुद्ध की शिक्षाओं को सुनकर हम उनकी समझ प्राप्त करते हैं और उन पर जितना अधिक ध्यान दिया जाए वह उतनी ही अधिक गहन और विस्तृत हो जाएगीं। इसलिए स्थिर एकाग्रचित्तता से अभ्यास बहुत आवश्यक है। हमारे सभी कार्यों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण बैठकर अभ्यास करना है। हमें बहुत अधिक इधर उधर नहीं घूमना चाहिए। हमें केवल अपनी जगह पर बैठना चाहिए। यदि हम उठेंगें तो केवल लड़खड़ाऍगें ! हमें उचित ढंग से बैठना चाहिए, बहुत तनकर नहीं, और याद रखें कि सबसे उत्तम अभ्यासी की ध्यान की गद्दी घिस जाती है, उनक जूतो के तलवे नहीं। निश्चय ही भावनाओं पर प्रतिपक्ष लगाना अपनी मातृभूमि को छोड़ने से कहीं अधिक कठिन है। क्योंकि यदि घर छोड़ने पर हममें यदि और अधिक मोह, इच्छा और क्रोध हो तो हमारे कार्यों ने हमारी सहायता नही की है अपितु हमारी साधना को हानि ही पहुँचाई है। अतः सबसे महत्वपूर्ण वस्तु है कि हम प्रतिपक्ष का प्रयोग करें

गलतियॉ मत करो

कुल छह त्रुटियॉ अथवा भ्रांत धारणाऍ हैं जिनसे हमें अपनी रक्षा करनी चाहिए।

भ्रांत क्षांति अथवा सहनशीलता :धार्मिक व्यक्ति जो कि बड़े साहस के साथ कठिनाइयों का सामना करते हैं और अपने अभ्यास में लगे रहते हैं यद्यपि उनके पास खाने ओर पहनने के नाम पर कुछ नहीं होता, ठंड में ठिठुरते हुए वे दयनीय प्रतीत हो सकते हैं। उन्हें वास्तव में भौतिक वस्तुओं का अभाव हो सकता है पर उन्हें हमारी दया की आवश्यकता नहीं होती। क्योंकि उनकी यह असुविधाऍ अल्पकाल के लिए होती हैं और यह माध्यम हैं जिनसे वे अंततः निर्वाण प्राप्त करेगें। उस प्रकार के साहस से बिलकुल भिन्न साधारण नायक की है जो कि अपने शत्रुओं को नष्ट करने के लिए ओर अपने पक्ष की सुरक्षा के लिए अपने शत्रुओं के विरुद्ध युद्ध में असहनीय कठिनाइयों का सामना करते हैं अथवा अपने नेताओं के क्रूर अनुशासन और क्रोध को झेलते हैं।

हमारा उद्‌देश्य सभी सत्वों की सहायता होनी चाहिए जो हमारी मॉ रहे हैं और उन्हें बुद्धत्व के स्तर तक लाना है। यह सोचकर कि हमने भली भॉति ध्यान किया है, एकांत वास किया है और कर्म कांडों से परिचित हैं अथवा जाप कर सकते हैं और साधना के विषय में जो कुछ जानना है वह सब जानते हैं हमें आत्म संतोष नहीं करना चाहिए और अपनी उपलब्धियों पर निर्भर नहीं होना चाहिए।

धर्म में न लेकर सासांरिक सुख में आनंद लेना यह भी एक त्रुटि है। 'यह अपने चित्त में रखो कि उपदेशों को सुनने से ज्ञान मिलता है; उपदेशों को सुनने से बुराइयॉ पलट जाती हैं, उपदेशों को सुनने से व्यर्थ की बातें छूट जाती हैं'। हमे यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि यह उपदेश सावृतिक रूप में अभिव्यक्त हुए हैं अथवा पारमार्थिक अर्थ में और हमें शब्दों से परे उस परमार्थ को पकड़ने का प्रयास करना चाहिए। फिर हमें अविभाजित ह्रदय से इसकी साधना करनी चाहिए। ऐसा करने पर निश्चित रूप से विकास संभव है। परन्तु धर्म का स्वाद चख लेने पर अधिकांश विद्वान केवल सांसारिक संतोष के लिए अपने बौद्धिक ज्ञान से सशस्त्र होकर विरोधियों के साथ तर्क और झगडों में पड़ कर मार्ग से हट जाते हैं। उनके धर्म के स्वाद ने उनके साथ झूटा खिलवाड़ किया है।

अनुचित करुणा उन अभ्यासियों के लिए दया भावना रखना जो धर्म के लिए पर्याप्त खाने और गरम वस्त्रों के बिना पर्वतीय प्रदेशों में एकांत स्थान में झोंपड़ियों में रहते हुए कई कठिनाइयों को झेलते हैं,गलत है। चितिंत होकर यह सोचना गलत है, 'ये बेचारे साधक! वे भूख से मरने वाले हैं! इसके विपरीत जिनके प्रति हमे दया आनी चाहिए वे हैं जो बुरा काम करते हैं जैसे कि सेना का नेतृत्व करने वाले और थल सेना के नायक जो कि सैकड़ों हज़ारों की हत्या करते हैं और जिनकी घृणा की भावना उन्हें नरक लोक तक खींच कर ले जाएगी। हमें उनकी ओर अपनी करुणा प्रेरित करनी चाहिए जिन्हे इसकी आवश्यकता है।

गलत ढंग से सहायक बनना अपने संबंधियों और आश्रितों को धर्म के सान्निध्य मे न लाकर सांसारिक सुख और सफलता से परिचय कराना भी गलत है। यदि हम वास्तव में उनके प्रति संवेदनशील हैं तो हमें धार्मिक गुरुओं से मिलने में हमें उनकी सहायता करनी चाहिए और अभ्यास में उन्हें निर्देशित करना चाहिए। दिन प्रतिदिन हमें उन्हें बताना चाहिए कि मुक्ति मार्ग पर किस तरह चला जाए। सज्जन औषधीय वृक्षों के समान होते हैं : जो भी उनकी संगत में आते हैं वे भी अच्छे हो जाते हैं। पर इसके विपरीत यदि हम लोगों का सिखाएँ कि किस तरह व्यापार करना चाहिए, किस तरह दूसरों को धोखा देना चाहिए और शत्रुओं के विरुद्ध खड़ा होना चाहिए तो वे हमारे जितने ही बुरे बनेंगें।

अनुपयुक्त ढंग से आनंदित होना जो भी आनंददायी और गुणवान है उसके स्थान पर शत्रुओं के दुःख को देखकर आनंदित होना गलत है। इसके विपरीत जब किसी अच्छे कारण के लिए लोग कार्य रत होते हैं अथवा जब धर्म के साधक अनगिनत *न्युंगने,* निंभोजन उपोस्थ व्रत धारण करते हैं, जब वे बहुत अधिक काम करते हैं, मंदिरों का निर्माण करते हैं,स्तूप और मूर्तियॉ बनाते हैं अथवा किताबें छापते हैं, तो हमें प्रार्थना करनी चाहिए : 'इस जीवन में और

उनके आगामी जीवनों में, वे सदा कुशलताओं का अभ्यास करें, उनके सद्कार्य उनके चित्त में बोधिचित्तोत्पाद करे।' यह आनंदित होने का उचित उपाय है। पर इसके विपरीत ऐसा कोई जिसे हम नहीं चाहते अपने से ऊँची पदवी वाले से सज़ा पाता है अथवा यदि मार भी दिया जाता है और यदि हम आनंद और संतोष का अनुभव करें यह सोचकर कि उसे वही मिला है जिसके योग्य वह था तो हम गलत ढंग से आनंदित हो रहे हैं।
यदि हम त्रुटि रहित मार्ग का पालन करना चाहते हैं तो हमें इन छह गलत कार्यों का त्याग करना चाहिए।

अपने अभ्यास में स्थिर रहो

जब हम संतुष्ट होते हैं और हमारा जीवन अच्छी तरह से चल रहा हो, तो हम अभ्यास की ओर प्रवृत्त होते हैं ; पर उदाहरण के लिए जब हम भूखे होते हैं और हमार पास खाने को कुछ नहीं होता तो हमारी रुचि चली जाती है। इसका कारण हममें शिक्षाओं के प्रति विश्वास का अभाव है। जैसी कि कहावत है 'भरपेट और सूर्य की उष्णता में' तभी हम अभ्यासियों जैसे लगते हैं। पर जब परिस्थितियॉ बिगड़ने लगती हैं तो हम बहुत ही आम व्यक्ति होते हैं। धर्म और हमारे चित्त में कभी मेल नहीं होता। हमें उवित व्यवहार का आशीर्वाद दो। और यह कहा भी गया है, 'साधक जिनका आचरण साधारण मार्गों में भटक गया है कभी उन्मुक्त नही हो सकते। दिखावे के लिए कई मंत्रों के जाप हमें मार्ग में सहायता नही दे सकता।

अपने प्रशिक्षण के प्रति उत्साही बनो

हम अपने आप को संपूर्ण ह्रदय से और चित्त प्रशिक्षण से पूर्णतया संतुष्ट होकर, कभी शून्यता पर, कभी इस जीवन से वैराग्य पर और कभी सत्वों के प्रति करुणा पर ध्यान लगाएँ। खोज और परीक्षण द्वारा हमें अधिकाधिक चित्त प्रशिक्षण के विकास के अभ्यास का प्रयास करना चाहिए।

स्वयं को विश्लेषण एवं परीक्षण द्वारा मुक्त करो

सबसे पहले हम यह जॉचें कि हमारी कौन सी भावनाएँ सबसे प्रबल हैं। तत्पश्चात हम उसके प्रतिपक्ष को पैदा करने का सच्चा प्रयास करें, यह जॉचते हुए कि क्या किसी विशिष्ट परिस्थिति में वह भावना अधिक होती है। हमें देखना चाहिए कि वह पैदा होती है अथवा नहीं, उसे पहचानें और प्रतिकारक की सहायता से स्वयं को उससे मुक्त करें और तब तक प्रयास करें जब तक कि वह पुनः पैदा नहीं होता।

जो तुम कर रहे हो उसे बहुत अधिक गंभीरता से मत लो

यदि हम दूसरों की सहायता खाना और कपड़े देकर, उन्हें कारागार से मुक्त करा कर अथवा उन्हें किसी महत्वपूर्ण पदवी पर उन्नत कर करें तो इसे किसी

प्रकार की प्रत्याशा की भावना से न करें। यदि हम गहनता से और एक दीर्घ काल तक अभ्यास करें, अथवा यदि हम ज्ञानी और अनुशासित हों तो हमें इसकी आशा नहीं करनी चाहिए कि इसके लिए हमें सम्मान प्राप्त होगा। यदि इसके विपरीत यदि हम यह देखें कि अन्य बहुत कुछ जानते हैं, तो हमें उनके सच्चे ज्ञानी होने के लिए प्रार्थना करनी चाहिए; यदि वे बहुत अनुशासित हों तो हमें उनके लिए प्रार्थना करनी चाहिए कि वे बुद्ध के समय के शिष्यों के समान हों; यदि हम लोगों को अभ्यासरत देखें तो हमें प्रार्थना करनी चाहिए कि उनके चित्त उनके अभ्यास के साथ एक हों; कि उनका अभ्यास बाधा रहित हो और उनके मार्ग उन्हें अंतिम उद्देश्य तक ले जाएँ। अपने से अधिक दूसरों का खयाल करते हुए हमें इसी तरह ध्यान करना चाहिए। पर यदि हम ऐसा कर सकें तो हमें यह सोचकर कि हम कुछ महान अथवा अनोखा काम कर रहे हैं अपनी स्वयं की प्रशंसा नहीं करनी चाहिए।' अन्य मनुष्यों पर निर्भर मत रहो; इष्ट देव से ही प्रार्थना करें। रादरेंग की यही सलाह थी। अतः दूसरों पर खाने, कपड़े आदि की सहायता के लिए निर्भर मत रहो। बल्कि त्रिरत्न के प्रति विश्वास पूर्ण श्रद्धा बनाए रखो। जैसा कि कहा गया है : शिक्षक पर विश्वास श्रेष्ठतम शरण है, दूसरों की भलाई के लिए काम करना श्रेष्ठतम बोधिचित्त है, इसलिए अपने उपलब्धियों के बारे में डींगें मत हॉको। 'हमारा व्यवहार सदा इस प्रकार का होना चाहिए, क्येंकि यदि हम दूसरों पर निर्भर रहें, तो परिणाम वह नहीं होगा जैसा हम चाहते हैं ...

बुरे स्वभाव का मत बनों

यदि ऐसा होता है कि हमें सार्वजनिक रूप अपमानित किया जाता है, तो हमें कभी न सोचना चाहिए कि इसके बावजूद कि हम इतने अच्छे अभ्यासी है, लोग हमारा सम्मान नहीं करते और लोग हमें सम्मान देने और हमारा आशीर्वाद लेने नहीं आते। हमारी प्रतिकिया क्रोध भरी और कठोर शब्द युक्त नहीं होनी चाहिए। इस क्षण क्योकि हमने शिक्षाओं का प्रयोग आत्म ग्राह्यता के एक प्रतिपक्ष के रूप में नहीं किया है इसलिए हमारी क्षंति और धैर्य एक फफोले से भी अधिक नाजुक है और हम घायल सिर वाले भालू के समान चिड़चिड़े हैं। चूँकि हम उपदेशों को प्रतिपक्ष के रूप में काम में लाने में असफल हुए हैं अतः यह सब कुछ है।

तुनुकमिज़ाज़ी मत हो

अपनी पारदर्शिता के कारण स्फटिक जिस रंग पर भी होता है उसे अपना लेता है। ठीक इसी तरह कुछ ऐसे अभ्यासी है जिन्हें यदि बहुत अधिक धन दे दिया जाए तो उनके कई विचार सकारात्मक हो जाते हैं। जैसे, यह

दयालु समर्थक है। पर यदि उन्हें कुछ नहीं मिलता तो वे निंदा करते हैं और मन में विद्वेश पालते हैं। हमें ऐसी छोटी छोटी बातों से बहकना नही चाहिए।

प्रतिफल की आशा मत करो

यदि हमने दूसरों की सहायता की है अथवा अभ्यास करने में समर्थ हुए हैं तो हमें धन्यवाद, प्रशंसा अथवा ख्याति की प्रत्याशा नहीं करनी चाहिए। यदि हम उभय बोधिचित्तों का अभ्यास जीवन भर करें,ध्यान और ध्यानोंपरांत अभ्यास उचित रूप से करें और यदि हम अपने चित्त को ध्यान के विचार से एक कर लें तो हमारे दिन प्रतिदिन का अनुभव साधारण नहीं होगा। इसके अतिरिक्त यदि हम अपने दैनिक जीवन में अन्यमनस्क न रहें तो यह हमारे ध्यान के विकास में सहायक होगा। पर यदि हम सत्रों के दौरान एकाग्रता से ध्यान करें, पर इसके बाद पूर्ण रूप से अन्यमनस्क हो जाएँ।तो हम ध्यान के संबंध में विश्वास प्राप्त नहीं कर पाऍगें। इसके विपरीत यदि ध्यानोपरांत यदि सद्‌गुणों का विकास करें पर ध्यान के सत्र के दौरान व्यर्थ के कार्यों में उलझे रहें तो हमारा अभ्यास निरर्थक होगा। अतः हमें अपने आप को सही रूप से प्रशिक्षित करने का सुनिश्चय करना चाहिए।

उपसंहार

उपदेशों का परिशुद्ध सार
दिया सेरलिंगपा ने
जो करे पंच अधोगति की उमड़ को करे परिवर्तित
निर्वाण के मार्ग पर

कलकि युग कीं पॉच निम्नलिखित अधोंगतियॉ हैं 1) सत्वो की भुखमरी, रोग, शस्त्र और युद्ध से पीड़ित होने के कारण अकाल मृत्यु होती है; 2) उनकी दुष्प्रवृत्ति होती है, अच्छाई के प्रति उनका कोई रुझान नही होता और वे पूर्णतया परम सिद्धांत के विरुद्ध होते है; 3) ऐसे सत्वो का जीवन अल्पकाल का होता है; 4) दूषित भावनाएँ प्रबल होती हैं; 5) विचार और दृष्टिकोण अपरिष्कृत ओर भ्रांत होते हैं।।

वर्तमान काल में सुख के हेतु बहुत कम हैं। सत्व दुष्कार्यों को जमा करते है, जिनके विभिन्न प्रभाव दु:ख को जन्म देते हैं। विपरीत परिस्थितियॉ जैसे कि पूर्व उल्लखित हैं बड़ी ही शक्तिशाली रूप में उपस्थित रहती हैं। यह एक वन में से गुज़रने के समान है जिसमे कि शाखाएँ पारस्परिक रूप से उलझी हुई हैं! पर फिर भी चित्त प्रशिक्षण पर ध्यान द्वारा जो हानि हमें होने वाली है चाहे वह बीमारी हो, दुरात्माओं के कार्य हों, अवरोध हों अथवा झूठी निंदा हो, यह सभी निरंतर हमारे सद्गुणों का विकास करते हुए निर्वाण के मार्ग में काम में लाए जा सकते हैं। यह वैसा ही है जब कोई जानता हो कि वह क्या कर रहा है तो विषैली दवा खा सकता है ताकि वे जीवन बनाए रखने के लिए दवा का काम कर सके। वह उनसे मरता नहीं पर वह उस मोर के समान है जो कि अपने विषैले भोजन से पोषित होकर सौदंर्य और वैभव में विकास पाता है।

इस बहुमूल्य बोधिचित्त से हर प्रकार का लाभ मिलता है। इसके द्वारा हम शरीर, वाक् और चित्त के सभी सकारात्मक कार्यो को एकत्रित करते हैं; अपने चित्त को उपदेशों से जोड़ते हैं और अपने तथा दूसरों के लिए संसार और निर्वाण के सभी सुखों से लाभान्वित होते हैं। इस चित्त प्रशिक्षण के उचित अभ्यास से वह समय दूर नहीं जब हम अन्य सत्वों ओर अपने लिए प्रचुर मात्रा में कल्याण कर सकेंगें।

अतीत के प्रशिक्षण से कर्मों को जगा
और प्रबल रूप से प्रेरित अनुभव से
मैंने दुःख और निंदा की उपेक्षा की
और अपनी आत्मतुष्टि के शमन के लिए उपदेशों का लिया अवलंब
यदि मेरी मृत्यु हो भी जाए पर अब मुझे होगा नहीं कोई पश्चाताप

योगिराज आचार्य छेकावा येशे दोर्जे कदम्पा संप्रदाय के कई गुरुओं के पास अकसर जाया करते थे। इस उपदेश को ग्रहण कर पूरी सच्चाई से उसका अभ्यास करते हुए उन्होंने उसे और सुना,चिंतन किया और ध्यान किया। वे उस स्तर पर पहुँचे जब आत्मतुष्टि से पूर्ण रहित होकर वे अपने से अधिक दूसरों के विषय में अधिक सोचते थे।

धर्म के राजा ड्राक्पा और
उनके समर्पित शिष्यों के दया भरे अनुरोध पर
सारगर्भित उपदेशों की इस रत्न सदृश संपदा
का प्रकटीकरण हुआ। इस उभय बोधिचित्त
का सभी अभ्यास करें और उत्पाद करें

निपुण महायानी अभ्यासी ड्राक्पा ग्यालसेन के बार बार अनुरोध पर सप्त बिंदु चित्त प्रशिक्षण की व्याख्या के ये कुछ शब्द भिक्षु थोगमें द्वारा डलछ डंग के एकांत स्थान पर लिखे गए। ड्राक्पा ग्यालछेन अपने शिष्यों से कहा करते थे, 'ऐसा मत सोचो कि अवलोकितेश्वर चार भुजाओं वाला पोटाला पर्वत पर निवास करने वाला, कोई व्यक्ति है; डलछ डंग में रह रहे लामा के दर्शन कर उनसे शिक्षा ग्रहण करो। अवलोकितेश्वर में दर्शनीय ऐसा कुछ नहीं है जो उनमें नहीं है।'

युवा काल की प्रारंभिक अवस्था से ही डुलछु थोगमे में बोधिचित्त बहुत प्रबल था। एक बार जब वे बहुत छोटे बच्चे थे वे बाहर पेशाब करने गए। वापिस लौटते समय उन्होंने बर्फ से ढँकी एक झाड़ी देखी। यह सोचते हुए कि वह एक आदमी है उस छोटे बालक ने उस झाड़ी को कपड़ों से ढँक दिया और नंगे शरीर घर लौट आया।

उसकी माँ ने पूछा, 'तुम्हारे सारे कपड़े कहाँ हैं?

'बाहर एक आदमी है जो कि ठिठुर रहा है', उसने उत्तर दिया, मैंने उसे ओढ़ा दिया है '। उसकी माँ बाहर गयी और उसने देखा कि वह केवल एक झाड़ी थी। ऐसे थे बोधिसत्व डुलछु थोगें। उन्होंने पूरी ईमानदारी से अभ्यास किया और वे बोधिचर्य जीवन के पूरे अनुभवी थे।

बोधिचित्त का यह प्रशिक्षण बुद्ध के चौरासी हज़ार शिक्षाओं का सार है। इस क्षण यदि हम इसकी निष्पत्ति में परिशुद्धता प्राप्त न कर पाएँ पर हमारा अभ्यास इसी

जीवन के सुख में अपना योगदान देगा, भविष्य में हम निम्न लोकों से बचेगें और उन सभी लोगों के लिए हम अत्यंत सहायक होंगें जिनके संपर्क में हम आते हैं। महामुद्रा,जोगछेन (महासंधि), अतियोग जैसी कई गहन और व्यापक शिक्षाएँ उपलब्ध हैं। पर हमारी मानसिक क्षमता थोड़ी है। हममें दृढ़ता नहीं है और इन शिक्षाओं की सहायता से विमुक्ति पाने के लिए पर्याप्त सम्मान और भक्ति का अभाव है। फिर भी यदि हम इस चित्त प्रशिक्षण का अभ्यास करें तो हम अत्यधिक लाभ का अनुभव करेंगें। यह एक बहुत अनोखी शिक्षा है और बोधिसत्व शिक्षाओं का बिलकुल निचोड़ है और इसकी बार बार प्रशंसा की गई है। अतः आइए हम इसका अभ्यास बिना किसी अन्यमनस्कता के करें।

आदि बुद्धों से लेकर हमारे आज के गुरुओं द्वारा सोची गई सत्वों के सुख की सभी कामनाएँ इस ग्रंथ को प्राणी मात्र को उपलब्ध कराने के द्वारा पूरी हों! यह मंगलमय हो!

चित्तामृत

सप्त बिंदु चित्त प्रशिक्षण की प्रार्थना

प्रथम कार्य – प्रारंभ मे पुण्यवान

I

प्रार्थना का शीर्षक

चित्तामृत, सप्त बिंदु चित्त प्रशिक्षण की प्रार्थना

II

मैं महायान के आध्यात्मिक मित्रों का नमन करता हूँ,
जो कि संसार और निर्वाण की सभी अच्छाइयों का आधार है
कृपावान गुरू के आशीर्वाद से
मेरा चित्त तीन प्रकार के विश्वास से शुद्ध हो जाए

दूसरा **कार्य, मध्य मे पुण्यवान**
पाठ का मुख्य विषय

I

पूर्व योग
शिक्षा का आधार

कृपावान गुरू के आशीर्वाद से
यह जानते हुए कि यह बहुमूल्य मानव जीवन की प्राप्ति
कितनी कठिन और इसका विनाश कितना सरल है
अपने प्रत्येक कार्यों, उनके कार्मिक प्रभावों के अनुसार, मैं वही
करूँ जो ठीक हो और उनसे बचूँ जो ग़लत हो
और पूर्व योग का प्रशिक्षण पाते हुए संसार से विमुक्ति पाने के
लिए एक सच्चे निश्चय का विकास कर सकूँ

II

मुख्य अभ्यास
बोधिचित्त का प्रशिक्षण

कृपावान गुरू के आशीर्वाद से,
मैं द्वैत के असत्य का शून्यता के आकाश में विशुद्ध कर सकूँ
निरंतर बोधिचित्त के दो अंगों पर निरंतर ध्यान करता हुआ
अपने तथा अन्य के सुख और दुःख के गहन लेन देन का
अभ्यास कर सकूँ

III
विषम परिस्थितियों को बोधिचित्त के मार्ग में परिवर्तित करना

कृपावान गुरू के आशीर्वाद से,
मुझ पर आने वाली हर विषम घटना अथवा दु:ख को
मैं आत्म ग्राह्यता की बुरी आत्मा की चाल के रूप में देख
उन्हें बोधिचित्त के मार्ग में काम में ला सकूँ

IV
अपने संपूर्ण जीवन में इस अभ्यास को काम में लाएँ

कृपावान गुरू के आशीर्वाद से,
अपने संपूर्ण जीवन काल में विशुद्ध दृढ़ता, विशुद्ध अभ्यास
पुण्य संभार,क्लेशों का विशुद्धीकरण और इच्छा शक्ति की
प्रेरणा की पॉच बलों के अभ्यास से
अपने जीवन काल के अभ्यास को इकलौते रूप में
संक्षिप्त कर सकूँ

V
चित्त प्रशिक्षण के चिह्न

कृपावान गुरू के आशीर्वाद से,
जब सब कुछ आत्मदृष्टि के प्रतिपक्ष के रूप में उत्पन्न हो
और मेरा चित्त सुख और विश्वास के साथ उन्मुक्तता का
अनुभव करें
तो मैं सभी विषम परिस्थितियों को मार्ग सदृश समझॅू

VI
चित्त प्रशिक्षण की प्रतिबद्धता

कृपावान गुरू के आशीर्वाद से,
मै वचन की प्रतिबद्धता बनाए रख सकॅू,
क्लेशों से मुक्त हो सकॅू
किसी प्रकार का पक्षपात और किंचित बाहरी दिखावा न हो;
अपने जीवन के समान वचन की प्रतिबद्धता की सुरक्षा बनाए
रख सकॅू

VII
चित्त प्रशिक्षण की अवधारणा

संक्षेप में कृपावान गुरू के आशीर्वाद से,
मैं सच्चे रूप में अपने चित्त का प्रशिक्षण कर सकूँ
सभी अवधारणाओं के अनुसार जो कि बोधिचित्त के दोनों रूपों को आगे बढ़ाते हैं
और इसी जीवन काल में महायान के उद्देश्य को प्राप्त कर सकूँ

तृतीय अंग; अंत में पुण्यात्मक
I

समर्पण

इस हंदयानुभूत प्रेरणा के पुण्य से
सप्त बिंदु चित्त प्रशिक्षण का अभ्यास
भगवान अतिशा और उनके शिष्यों के चित्त सार से
सभी सत्व संबुद्धत्व को प्राप्त करें

II

यह प्रार्थना कैशै नेथ्रग में जाम्यांग खेंटसे वांगपो द्वारा जो कि निश्चिंत भाव से घूमा करते थे पर जिनके मन में बहुमूल्य कदंप परंपरा के प्रति सर्वोच्च सम्मान था पूरी एकाग्र चित्तता

के साथ महान अतिशा की अनमोल मूर्ति के समक्ष की गई। मुझे इस प्रार्थना को साकार करने का आशीर्वाद प्राप्त हो।

सद्गुण बने रहें !

टिप्पणियाँ

1 **चेनेरेज़िग** अवलोकितेश्वर अथवा लोकेश्वर, करुणा के बोधिसत्व, बुद्ध के 'आठ अंतरंग पुत्रों' में से एक। वे सभी बुद्धों ओर उनकी करुणा के साकार रूप के वाक का सार माने जाते हैं। वह तीन बोधिसत्वों में से एक हैं (अन्य दो हैं मंजुश्री और वज्रपाणि) तीन कुलों के रक्षक माने जाते हैं। और अंत में वे तिब्बत क्षेत्र ओर वहाँ के लोगों के समर्थक और संरक्षक हैं।

2 **डुलछु थॉग्मे ज़ांगपो :** (1325-1369) महान बटों रिनपोछे के शिष्य और कदम्पा परंपरा के जाने माने आचार्य। वे ' बोधिसत्व के सैंतीस साधना के लेखक हैं।

3 **गुरु रिनपोछे** : यह पद्मसंभव अथवा ऑरग्येन पेमा जुंगने पद्म से जन्मे ओड्डियान के गुरु के नाम से भी जाने जाते हैं। यह अद्वितीय प्रज्ञा और योगिक शक्ति के महान तांत्रिक गुरु थे जिन्हें राजा ठ्रिसोंग देगुचन ने धर्म के प्रचार के लिए तिब्बत आमंत्रित किया था। उन्होंने बौद्ध सिद्धांतों के विरुद्ध नकारात्मक शक्तियों का शमन किया और उन्हे परिवर्तित कर उन्होंने पूरे देश को अपनी शिक्षाओं से भर दिया और आगे आने वाली पीढ़िसों के कल्याण के लिए धर्म संपत्ति के रूप में छिपा कर रख दिया। वे द्वितीय बुद्ध माने जाते है। और स्वयं शाक्यमुनि ने उनके आने की भविष्यवाणी की थी।

4 **नागार्जुन** : (तीसरी शती) भारत के महान आचार्य और प्रज्ञापारमिता शिक्षा के संयोजक ओर माध्यमिका प्रणाली के संस्थापक

5 **अतिशा दीपांकर :** (982 –1054) भारत के महान आचार्य और विद्वान जो तिब्बत में केवल *जोवो जे*, स्वामी के नाम से जाने जाते थे। वह विक्रमशिला विश्वविद्यालय के सर्वाधिक ख्याति प्राप्त शिक्षक थे और मठ के अनुशासन के प्रबल रक्षक माने जाते थे। अपने जीवन के अंतिम बारह दिन उन्होंने तिब्बत में बिताए जहाँ उन्होने व्यापक रूप से प्रशिक्षण दिया और एक नृशंस अत्याचार की अवधि के पश्चात धर्म का पुनरोद्धार किया। और बौद्ध ग्रंथों के तिब्बती अनुवाद में बहुत सहयोग दिया।

6 **छेकावा येशे दोर्जी** : (1101–1175) प्रख्यात कदम्पा आचार्य। सात बिंदुओं के रूप में चित्त प्रशिक्षण की शिक्षाओं का नियोजन कर उन्होंने उन्हें पूर्व प्रचलन की अपेक्षा बहुत अधिक सुगम और प्रचलन के लिए सरल बनाया।

7 **विक्रमशिला और नालंदा** : जब तक कि इसी देश में 12 वीं शती के अंत में बौद्ध धर्म का ह्रास नहीं हुआ तब तक भारत के विख्यात बौद्ध विश्वविद्यालय।

8 **ल्हासा,** सम्यै और ट्रानड्रुक के तीन सर्वाधिक महत्वपूर्ण पवित्र स्थल। ल्हासा, देश की राजधानी और परम पावन दलाई लामा का पीठ, तथा जाने माने मदिंरों का स्थल जैसे जोखांग जिसमें जोवो रिनपोछे प्रतिस्थापित हैं (टिप्पणी 18 देंखें) सम्यै : राजा ट्रिसांग डेटसेन, गुरु रिनपोछे और उपाध्याय शांतरक्षिता द्वारा 8वीं शती में प्रतिस्थापित तिब्बत की प्रथम मठ, ट्री स्रोड देहुचन : तिब्बत के दक्षिण में प्रथम बौद्ध राजा स्रोडचन गांपो द्वारा प्रतिस्थापित

9 **मिलारेपा** (1052–1135) तिब्बती इतिहास के सर्वाधिक विख्यात और लोकप्रिय कवि और योगी। वह अनुवादक मारपा के शिष्य थे जिन्होंने उन्हें शिक्षा देने की सहमति के पहले जादू टोने द्वारा अपने परिवार के कुछ लोगों की हत्या की नकारात्मकता की शुद्धि के लिए उनकी वर्षों परीक्षा ली। पर शिक्षा ग्रहण करने के बाद मिलारेपा ने अपना बाकी जीवन पर्वतीय एकांत में बिताया। उन्हें सर्वोच्च प्रबुद्धता प्राप्त हुई और वे अपने पीछे अनुभूति की कविताओं ओर गीतों की एक संपन्न धरोहर छोड़ गए हैं।

10 **शांतिदेव** (690–740) राजवंश में जन्में प्रख्यात भारतीय आचार्य और मठ विषयक नालंदा विश्वविद्यालय के सदस्य। सुप्रसिद्ध *बोधिचर्यावतार* के रचयिता

11 **बुरी आत्माएँ** : अपने प्रारंभिक काल में ही बौद्ध धर्म ने सदा से ही अमानवीय आत्माओं अर्थात वे सत्व जो कि साधारणतया भौतिक इंद्रियों द्वारा जाने नहीं जाते की उपस्थिति को स्वीकार किया है और भोट परंपरा में विशेषकर बुरी आत्माओं भूतों आदि का संदर्भ दिया जाता है

जिनकी पहचान और वर्गीकरण एक जटिल नरकदूत विद्या के अनुसार होती है। परन्तु संदर्भ के अनुसार उनका वर्णन अलग अलग ढंग से और विभिन्न सूक्ष्मता के स्तरों के अनुसार किया जाता है। जहाँ तक असुरों के सत्वो के रूप में जो कि संसार में फँसे और दुःख से पीड़ित हैं वे जैसा कि यह ग्रंथ अकसर संकेत करता है हमारी करुणा की उपयुक्त वस्तुएँ हैं। पर अकसर और पारंपरिक दृष्टिकोण के अनुसार जैसा बार बार होता है उन्हें मानसिक शक्तियों के साकार रूप में समझा जाता है,संभवतः यह आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान की जटिलताओं और स्नायु रोगों की विशिष्टताओं के समान है – दूसरे शब्दों में हमारे अपने चित्त और हमारे अपने कर्मो का प्रकट रूप है। खनपो डबड पलजंग ने कहा है, 'हम जिसे असुर कहते हैं वह खुले मुँह और आँखें फाड़ कर दंखने वाला कोई नहीं है। यह वह है जो कि समस्त संसार की कठिनाइयों को जन्म देता है और हमें दुःख से परे की स्थिति जो कि निर्वाण की है तक पहुँचने से रोकता है, संक्षेप में यह वह है जो हमारे शरीर और चित्त को चोट पहुँचाता है।'

12 **पाद्रुल रिनपोछे** (1808–1887) ओरग्येन जिग्मे छोकी वांगपो जो कि ज़ोगछेन पाल्गे टुल्कु या त्ज़ा पाद्रुल के नाम से भी जाने जाते हैं। पूर्वी तिब्बत के खम प्रांत में पैदा हुए एक असाधारण गुरु। अपने समय के सभी प्रख्यात गुरुओं की देख रेख में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात वे कंदराओं अथवा वन वृक्षों के नीचे रहते हुए एक भ्रमणशील संन्यासी हो गए जिनके पास न तो घर था और न ही मठ। वह अनवरत रूप से प्रेम और करुणा पर ध्यान करते रहे जिनको वे आध्यात्मिक अभ्यास का मूल मानते थे। वे बोधिसत्वाचरण के जीवंत उदाहरण थे और शांतिदेव के अवतार माने जाते थे। वे गहन विद्वत्ता वाले थे और उन्हें असाधारण स्मरण शक्ति का वरदान मिला था और तिब्बती बौद्ध धर्म के सभी संप्रदाओं में सम्मान का पात्र थे। 19वीं शताब्दी में प्रारंभ हुए राइम नाम के एक असांप्रदायिक आंदोलन के एक महत्वपूर्ण प्रतिनिधि बने। वे प्रख्यात कुनज़ांग लामाइ ज़ल लुंग के लेखक हैं जिसका अंग्रेज़ी में 'द वर्डस ऑफ माइ परफेक्ट मास्टर' नाम से अनुवाद हो चुका है।

13 **बोधिचर्यावतार** शांतिदेव का महान काव्य जिसमें बोधिसत्व के जीवन और महायान दर्शन के सभी पक्षों की व्याख्या हुई है।

14 **ब्राह्मण** भारत की चार महान जातियों में से श्रेष्ठतम पुरोहित जाति के सदस्य

15 **देवाचन (सुखवती) की विशुद्ध भूमि** बुद्ध अमिताभ (अपरिमित) का विशुद्ध क्षेत्र। विशुद्ध क्षेत्र एक ऐसा आयाम अथवा विश्व है जो कि एक बुद्ध अथवा बोधिसत्व तथा सत्वों की पुण्यशील शक्ति की प्रबुद्ध आकांक्षा से प्रकट होता है। विशुद्ध क्षेत्र में पुनर्जन्म प्राप्त किए सत्व अत्यंत द्रुत गति से निर्वाण की ओर विकास करते हैं और कभी संसार के निम्न तलों मे नहीं गिरते। पर यह समझना आवश्यक है कि कोई स्थान जिसे सहज प्रज्ञा का विशुद्ध क्षेत्र माना जाए वास्तव मे विशुद्ध क्षेत्र है।

16 **आज़ोम ड्रुकपा** (1842–1924) जाम्यांग खेंनचे वांगपो के शिष्य और द्वितीय जाम्यांग खेंनचे चोकी लोड्रो के गुरु,साथ ही दिल्गो खेंनचे रिनपोछे के भी गुरु। वह धर्म संपदा के खोजकर्ता थे (गुरु रिनपोछे पर 3 पादटिप्पणी देखें) और निंगमापा शिक्षा के संप्रेषण के अत्यंत महत्वपूर्ण शिक्षक थे।

17 **गेशे खरक गोमछुड** ग्यारहवीं शताब्दी के कदम्पा आचार्य और पुतोवा के शिष्य

18 **जोवो रिनपोछे** ग्यारह वर्ष के बुद्ध शाक्यमुनि की प्रतिमा जो कि ल्हासा के मुख्य मंदिर जोखांग में प्रतिष्ठित है। मान्यता है कि यह प्रतिमा स्वयं बुद्ध के द्वारा अभिमंत्रित की गई ओर राजा स्रोडचन गाम्पो की एक पत्नी द्वारा तिब्बत लाई गई।

19 **बुद्ध शाक्यमुनि** हमारे समय के सार्वभौमिक बुद्ध। वर्तमान कल्प के सहस्त्र बुद्धों में चतुर्थ।

20 **उपाध्याय शांतरक्षिता** बोधिसत्व खनपो के नाम से भी जाने जाते हैं, महायान के महान आचार्य और नालंदा के मठाधीश। वे राजा ट्रिस्रोड देहुचन द्वारा धर्म के प्रचार और सम्यै मठ के निर्माण के लिए तिब्बत आमंत्रित किए गए थे।

21 **वज्रपाणि** बुद्ध के अष्ट अंतरंग पुत्रों में से एक, सभी बुद्धों के चित्तों का सार और उनकी शक्ति का प्रकट रूप (पादटिप्पणी 1 देखें)

22 **तोनपा** (1005–1064) अतिशा के प्रमुख तिब्बती शिष्य, कदम्प संप्रदाय के प्रतिस्थापक और राड्रेंड मठ के निर्माता।

23 **लांगरी थांगपा** (1054 –.1123) कदम्प आचार्य, पुतोवा के शिष्य, चित्त प्रशिक्षण की आठ की अष्टकारिका के रचयिता, लांगथांग मठ के निर्माता।

24 **मारपा** (1012–1097) महान अनुवादक और तिब्बती आचार्य, ड्रोगमी, नरोपा, मैत्रिपा और अन्य महान सिद्धों के शिष्य। वे भारत से कई ग्रंथ और किताबें लेकर आए और महायान बौद्ध धर्म के काग्युपा संप्रदाय की स्थापना की।

25 **ज़ो** सुरागाय और गाय का संकर, बहुत ही शक्तिशाली जानवर, बैल से बहुत अधिक शक्तिशाली

26 **गंम्पोपा** (1079–1153) धॉगपो रिनपोछे के नाम से भी विख्यात, मिलारेपा के सबसे प्रसिद्ध शिष्य और काग्यु मठीय संप्रदाय के स्थापक।

27 **षड़प्ररुदित** बुद्ध धर्मोद्गत के समकालीन के एक महान बोधिसत्व का नाम, सिद्धांत की खोज मे अपने साहस और धैर्य के लिए ख्याति प्राप्त

28 **चार तांत्रिक प्रकार्य** कभी कभी ये चार प्रकार के प्रबुद्ध कार्य के नाम से भी जाने जाते हैं। वे हैं प्रशमन, बढ़ाना अथवा संपन्नता, आकर्षण और विमुक्ति (अर्थात चेतना को एक उच्चतर स्तर पर प्रबल रूप से संप्रेषण)

29 **न्युंगने** शुद्धीकरण का एक कठोर अभ्यास जो कि बोधिसत्व चेनेरेज़िग से संबद्धित है। इसमें मंत्र जाप, कठोर उपवास और साष्टांग आवश्यक हैं।

30 **राडरेंग** ड्रोमटोंपा, टिप्पणी 21 देखें

31 **भगवन अतिशा** टिप्पणी 5 देखें

शब्दावली

आलय इस संस्कृत शब्द का अर्थ है 'भंडार'। तिब्बती भाषा में यह '*कुन ज़ी*' के नाम से जाना जाता है और जिसका शाब्दिक भाव है 'सभी वस्तुओं का आधार' और यह समान रूप से चित्त और पदार्थों के आधार शुद्ध और अशुद्ध दोनों का संकेत देता है। विभिन्न संदर्भों में इस शब्द के विभिन्न अर्थ हैं और उन्हें उसी रूप में समझा जाना चाहिए। कभी कभी यह बुद्ध काय अथवा धर्मकाय का पर्याय है। पर अधिकांश अवसरों पर इसका अर्थ द्वैत की तटस्थ पर अचेतन चित्त की स्थिति से है जो कि काय, वाक् और चित्त के सभी कार्यों के मानसिक चिह्नों के पात्र का कार्य करता है।

अर्हत : शाब्दिक अर्थ है 'वह जिसने शत्रुओं का विनाश कर दिया है'। यहाँ शत्रुओं का अर्थ क्लेशों से है जिनको मूल यान या श्रावकयान/हीनयान के उपदेशों के अभ्यास से नष्ट किया जा सकता है। अर्हत संसार के दुःख से विमुक्ति पाते हैं पर चूँकि शून्यता की उनकी अनुभूति संपूर्ण नहीं है अतः वे पदार्थों की वास्तविकता के मोह जो कि सर्वज्ञता के मार्ग में बाधक हैं के सूक्ष्म आवरणों को दूर करने में असमर्थ रहते हैं। उन्हें अभी भी बुद्धत्व के महान उद्देश्य तक के विकास के लिए महायान में प्रवेश करने की आवश्यकता है।

बार्दो शाब्दिक रूप से 'दो के बीच' अर्थात अंतर्वर्ती स्थिति। बार्दो कई प्रकार के हैं पर अधिकांशतया यह शब्द मृत्यु और पुनर्जन्म की अंतर्वर्ती स्थिति के लिए प्रयुक्त होता है।

बोधिचित्त प्रबुद्ध चित्त। यह महायान का मूल शब्द है। सांवृतिक स्तर पर यह सभी सत्वों के कल्याण के लिए बुद्धत्व की प्राप्ति साथ ही इसके लिए आवश्यक अभ्यास की कामना है। परमार्थ के स्तर पर यह आत्म और पदार्थों के वास्तविक रूप की प्रत्यक्ष पहचान है।

बोधिसत्व बुद्धत्व के मार्ग के अभ्यासी, करुणा के अभ्यास और षट पारमिताओं का प्रशिक्षण, वह जिसने सभी सत्वों के कल्याण के लिए बुद्धत्व की प्राप्ति का व्रत लिया है। इस शब्द के तिब्बती अनुवाद का शाब्दिक अर्थ है, 'प्रबुद्ध चित्त का नायक'

बुद्ध वह जिसने दो आवरणो को दूर कर दिया है (क्लेशों का आवरण , जो कि दु:खों का हेतु है और ज्ञेय का आवरण जो कि सर्वज्ञता में बाधक है) और जिसने दो प्रकार के ज्ञान को परिशुद्ध कर लिया है। (पदार्थों के परमार्थ और सांवृतिक प्रकृति पर)

बुद्ध धर्म बुद्ध की शिक्षाएँ (धर्म देंखें)

चोद् शाब्दिक अर्थ काटना है। प्रज्ञा पारमिताओं की शिक्षाओं पर आधारित तांत्रिक ध्यान की एक प्रणाली जिसका परिचय फदम्पा संग्यै द्वारा तिब्बत को कराया गया। इसका उद्देश्य आत्म के प्रति सभी मोह को काटना है।

प्रदक्षिणा एक अत्यंत पुण्यकारी आध्यात्मिक अभ्यास जिसमें किसी पवित्र वस्तु उदाहरण के लिए कोई मंदिर, स्तूप, पवित्र पर्वत अथवा घर और यहाँ तक कि किसी आध्यात्मिक गुरु के चारों ओर जागरूकता के साथ चक्कर लगाना पड़ता है।

धर्म बुद्ध शाक्यमुनि और अन्य संबुद्धों द्वारा दी गई शिक्षाओं का संग्रह। इसके दो अंग है : प्रसारण का धर्म अर्थात शिक्षाएँ जो कि वास्तव मे प्रदत्त की जाती हैं और अनुभूति का धर्म या प्रज्ञा के स्तर आदि ज़ो कि शिक्षाओं के प्रयोग से प्राप्त होती हैं।

धर्मकाय परमार्थ या सत्य काय ; शून्यता का एक रूप

ज़ोगचेन – महासंधि अतियोग महा पारमिता। निङःमा संप्रदाय के अनुसार महत्तम दृष्टिकोण

बहुमूल्य मानवीय अस्तित्व की अठारह विशिष्टताएँ इन अठारह विशिष्टताओं में आठ स्वतंत्रता और दस वरदान शामिल हैं। आठ स्वतंत्रताओं में इन स्थानों पर न जन्म लेना है 1 नरक लोक में 2 क्षुधाकुल भूत के रूप में 3एक जानवर के रूप 4 देवलोक मे 5 बर्बर लोगों के बीच जो कि बुद्ध धर्म की शिक्षाओं और अभ्यासों से अनजान हैं 6 मिथ्या दृष्टि वाले जैसे कि जो 7 ऐसे समय अथवा स्थान जहाँ बुद्ध अवतरित न हुए हों 8 मानसिक रूप से अपंग। दस वरदानों का पुनः वर्गीकरण हुआ है पाँच जो कि व्यक्तित्व की आंतरिक हैं और पाँच जो कि बाह्य हैं। पाँच आंतरिक वरदान है 1 मनुष्य रूप में जन्म लेना 2 एक मध्य क्षेत्र

में निवास करना अर्थात जहॉ बौद्ध धर्म की घोषणा हुई हो — 3 सभी साधारण क्षमताओं से युक्त होना 4 ऐसा व्यक्ति होना जिसने स्वयं को महा कार्मिक नकारात्मकता के हवाल न कर दिया हो और 5 धर्म में आस्था होना। पॉच बाह्य वरदान के तथ्य हैं कि 1 एक बुद्व संसार में अवतरित हुए हैं 2 दूसरा यह कि उन्होंने धर्म की व्याख्या की है, 3 कि उनका धर्म आज भी जीवित है। 4 कि उसका अभ्यास किया जाता है और 5 कि व्यक्ति को एक आध्यात्मिक गुरु द्वारा शिष्य रूप में स्वीकार किया जाता है।

कदम्प तिब्बती बौद्ध धर्म की परंपरा जो कि अतिशा की शिक्षाओं से ली गई है। इसकी शिक्षा मठीय अनुशासन, करुणा का अध्ययन और अभ्यास पर बल देती है। कदम्प परंपरा का प्रभाव सभी तिब्बती संप्रदायों पर छाया है यद्यपि यह खास कर गेलुगपा शिक्षा के साथ जोड़ा जाता है जो कि कभी कभी गेलुग नूतन कदम्प के नाम से भी जाना जाता है।

काग्युपा अनुवादक मार्पा (1012 - 1095) द्वारा प्रतिस्थापित तिब्बती बौद्ध धर्म नई की परपंराओं में से एक है।

कल्प भारत के पारंपरिक ब्रह्मांड विज्ञान की धारणा के अनुसार यह शब्द एक अति दीर्घ काल के लिए प्रयुक्त होता है। एक महा कल्प जो कि एक ब्रह्मांड के सृजन, समयावधि, एक सार्वभौमिक प्रणाली के अदृश्य हो जाने और न होने के समय से मेल खाती है अस्सी कल्पों से निर्मित है। एक मध्यवर्ती कल्प दो छोटे कल्पों के मेल से निर्मित है जिसमें कि पहले मे जीवन की अवधि बढ़ती है जबकि दूसरे में घटती है।

कर्म संस्कृत शब्द जिसका अर्थ कार्य है जो कि हेतुओं के नियमों के रूप में समझी जाती है। बुद्ध के अनुसार सभी कार्य चाहें वे विचार, शब्द अथवा कार्य के हों बीज सदृश हैं जो कि अंततः अनुभव के स्तर पर चाहे इस जीवन में अथवा आगामी जीवन कालों में फलीभूत होंगें। एक सकारात्मक अथवा पुण्य कर्म का परिणाम सुख होगा जबकि पाप की परिभाषा अथवा नकारात्मक कार्य वह है जो कि कर्ता के लिए भविष्य में दुःख का कारण है।

निम्न लोक संसार पर टिप्पणी देखें।

महामुद्रा काग्युपा परंपरा के अनुसार उच्चतम दर्शन

माला मंत्र जाप की सहायता के लिए साधारणतया 108 दानों की लड़ी

महायान श्रावक यान की टिप्पणी देखें।

मणि चेनेरेज़िग का षड़ाक्षरी मंत्र 'ओम् मणि पद्मे

मंत्र शब्दों अथवा अक्षरों का सूत्र जो कि विशिष्ट ध्यान देवताओं से संबद्धित है, जिसका जाप तांत्रिक ध्यान में एक आवश्यक अंग है।

मंत्रयान यह कभी कभी वज्रयान के नाम से भी जाना जाता है। तंत्र पर आधारित शिक्षाएँ और अभ्यास जो कि वास्तव में महायान का एक अंग हैं कभी कभी एक पृथक यान के रूप में मानी जाती हैं। श्रावक यान पर टिप्पणी देंखें।

निर्माणकाय वाक् का प्रकट रूप करुणा और उपाय का अंग जिससें अप्रबुद्ध सत्व बुद्ध को समझ सकें और इसलिए वह उपाय जिससे वह उनसे संप्रेषण कर सके और उनकी सहायता कर सके।

निर्वाण इस संस्कृत शब्द का तिब्बती अनुवाद होगा 'जो दुःखातीत हो' और श्रावकयान अथवा महायान के अभ्यास से प्राप्त विभिन्न स्तरों की प्रबुद्धता को दर्शाती हो।

निंङःगम्पा प्राचीन आठवीं शताब्दी में गुरु पद्मसंभव द्वारा प्रतिस्थापित तिब्बती बौद्ध धर्म की प्रारंभिक परंपरा

प्रत्येकबुद्ध वह जो कि बिना गुरु की सहायता के अकेले ही बोधि को प्राप्त करता है और वह जो दूसरों को शिक्षा का प्रसार नहीं करता।

प्रतिमोक्ष वैयक्तिक मुक्ति : आठ प्रतिमोक्ष संवर जिसमें एक कालिक तथा शेष सात जीवन पर्यन्त के लिए संवर लिया जाता है।

विशुद्ध क्षेत्र 15वीं पाद टिप्पणी देंखें।

रिनपोछे शाब्दिक अर्थ में 'सबसे मूल्यवान व्यक्ति'। पुनर्जन्म लिए लामा, मठाधिपतियों और आदरणीय सन्यासियों के लिए प्रयुक्त संबोधन

साधना कर्मकांड, अथवा कर्मकांड का ग्रंथ जो कि मंत्रयान मे ध्यान के लिए एक सहारे का काम करता है।

संभोगकाय अमानवीय स्वरूप जिसमें एक बुद्ध केवल उच्च स्तरीय अनुभूत सत्वों के समक्ष ही स्वयं को प्रकट करते हैं।

संसार भव चक्र। अप्रबुद्धता की स्थिति जिसमें चित्त तीन विष काम, क्रोध अज्ञान के आधीन हो निरंकुश होकर और मानसिक शारीरिक अनुभवों की अनंत धारा से गुज़रता हुआ एक स्थिति से दूसरी में जाता है जो कि सभी दुःख से भरी हैं। छह लोकों में प्रवेश देंखें।

श्रावकयान / हीनयान धर्म के अभ्यासी को दो अलग शिक्षाओं के आधार अथवा यानों जो कि उनके उद्देश्य के अनुकूल हो के आधार पर पहचाना जाता है। ये हीनयान अथवा मूल यान और महायान के नाम से जाने जाते हैं। मूल यान को पुनः श्रावक के यान, बुद्ध के शिष्य और वे जो स्वयं पर निर्भर होकर प्रबुद्धता की खोज करते हैं प्रत्येकबुद्ध में विभाजित किया गया है। श्रावक और प्रत्येकबुद्ध का उद्देश्य निर्वाण है जो कि संसार के दुःखों से निश्चित विमुक्ति है। महायान बोधिसत्वों का है जो कि अन्य यानों की वैधता और प्रभावोत्पादकता को स्वीकार करते हुए अन्य सत्वों के कल्याण के लिए सम्यक्यकसंबुद्धत्व की कामना करते हैं। हीनयान शब्द अकसर निंदात्मक रूप में प्रयुक्त होता है और इसी कारण लोग इसका प्रयोग नहीं करते। अनेक आचार्यों ने उदाहरण के लिए परम पावन दलाई लामा और न्यानपोनिका महाथेरा ने इसके स्थान पर 'श्रावकयान' के प्रयोंग का सुझाव दिया है हालॉकि यहॉ इस वर्गीकरण में प्रत्येकबुद्ध भी शामिल हैं।

षट् लोक भवों की सांसारिक अनुभूतियों को परंपरिक रूप से छह साधारण वर्गों में विभाजित किया गया है जो कि लोक के नाम से जाने जाते हैं और जिनमें अपने पूर्व जन्मों के कारण चित्त बसता है। इनमें से कोई भी संतोषजनक नहीं है यद्यपि उन सभी में दुःखों के स्तरों में अंतर है। तीन उच्चतर अथवा भाग्यशाली लोक जहॉ अस्थायी सुख द्वारा दुःख कम होता है वे सांसारिक देवता के स्वर्ग हैं, असुरों और दानवों के लोक हैं और मानव लोक। तीन निम्न लोक

जहाँ सभी अन्य अनुभूतियों पर दुख का प्रधान्य रहता है में जानवरों, क्षुधा ग्रस्त भूत और नरक लोक रहता है।

षड पारमिता दान,शील, क्षांति, वीर्य, ध्यान और प्रज्ञा के छह कार्य जो कि बोधिसत्व मार्ग का अभ्यास है।

सुगतगर्भ तथागतगर्भ देंखें

सूत्रयान महायान के दो उपवर्ग हैं सूत्रयान यानि जो कि सूत्र पर आधारित हैं और जो षट् पारमिताओं के अभ्यास को प्रस्तुत करता हो और मंत्रयान, तंत्र ग्रंथो पर आधारित शिक्षा और अभ्यास

स्वाभाविक काय आवश्यक काय, अन्य तीन कायों के अविछिन्नता का भाग

तथागतगर्भ बुद्ध स्वभाव, बुद्धत्व की क्षमता, प्रत्येक सत्वो के चित्त में अवस्थित

त्रि प्रशिक्षण अनुशासन, ध्यान और प्रज्ञा

त्रिरत्न बुद्ध, धर्म और संघ। शरण के ये तीन विषय हैं।

तोर्मा मंत्रयान के अभ्यास और कर्मकांड में काम मे लाया जाने वाली बलि जो कि विभिन्न आकारों की और वस्तुओं की बनी होती हैं। परिस्थितियों के अनुसार वह एक चढ़ावा, ध्यान देवता का प्रतीक अथवा मंडल, अथवा यहाँ तक कि मार्ग से बाधाओं को दूर करने के लिए आयोजनो में काम मे भी लाया जाता है।

विपश्यना भेदक अंतर्दृष्टि ध्यान जो कि चित्त और पदार्थों दोनों में स्वभावसत्तता के अभाव को प्रकट करती है।

धर्म चक्र बुद्ध की शिक्षाओं का प्रतीक। धर्म को मोटे तौर तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है जिसे पारंपरिक रूप से त्रि धर्म चक्र प्रवर्तन कहते हैं। प्रथम धर्म चक्र प्रवर्तन का संबंध बुद्ध के प्रथम उपदेश दुःख के चार आर्य सत्य और दुःख से विमुक्ति से है। द्वितीय प्रवर्तन शून्यता की शिक्षा कि सभी पदार्थ स्वभावसत्ता और सच्चे अस्तित्व से रहित हैं। तृतीय प्रवर्तन में तथागतगर्भ अथवा सभी सत्वों के चित्त में उपस्थित बुद्ध स्वभाव के विषय में शिक्षा हे।

यिदम देव मंत्रयान में बुद्ध के एक रूप को कल्पना और ध्यान के लिए एक आलंब के रूप में काम में लाया जाता है। ऐसे देव, पुरुष भी हो सकते हैं और स्त्री भी,शांत स्वरूप अथवा रौद्र रूप वाले हो सकते हैं और इन्हें अंततः ध्यानी के चित्त से अपृथ्थकरणीय माना जाता है। संस्कृत में इष्ट देव कहते हैं।

"Wherever the Buddha's teachings have flourished,
either in cities or countrysides,
people would gain inconceivable benefits.
The land and pepole would be enveloped in peace.
The sun and moon will shine clear and bright.
Wind and rain would appear accordingly,
and there will be no disasters.
Nations would be prosperous
and there would be no use for soldiers or weapons.
People would abide by morality and accord with laws.
They would be courteous and humble,
and everyone would be content without injustices.
There would be no thefts or violence.
The strong would not dominate the weak
and everyone would get their fair share."

**※ THE BUDDHA SPEAKS OF
THE INFINITE LIFE SUTRA OF
ADORNMENT, PURITY, EQUALITY
AND ENLIGHTENMENT OF
THE MAHAYANA SCHOOL ※**

With bad advisors forever left behind,
From paths of evil he departs for eternity,
Soon to see the Buddha of Limitless Light
And perfect Samantabhadra's Supreme Vows.

The supreme and endless blessings
of Samantabhadra's deeds,
I now universally transfer.
May every living being, drowning and adrift,
Soon return to the Pure Land of Limitless Light!

*** The Vows of Samantabhadra ***

I vow that when my life approaches its end,
All obstructions will be swept away;
I will see Amitabha Buddha,
And be born in His Western Pure Land of
Ultimate Bliss and Peace.

When reborn in the Western Pure Land,
I will perfect and completely fulfill
Without exception these Great Vows,
To delight and benefit all beings.

*** The Vows of Samantabhadra Avatamsaka Sutra ***

Prayer by Tz'u Yun Ts'an Chu

Wholeheartedly we take refuge in Amita Buddha of
the Western Pure Land of Ultimate Bliss.
May His pure light shine upon us,
And His kind vows accept us.
We are now mindful, And invoke Tathagata's name;
Aiming at Bodhi, We seek rebirth into the Pure Land.
The Buddha made his own vow,
That if any sentient being who might wish to be reborn in
His Pure Land,
With determination and faith or with even only ten invocations,
Should yet fail to be reborn there,
He would not have attained Supreme Enlightenment.
By virtue of this mindfulness of Buddha,
we may enter Tathagata's Great ocean of vows.
By the Buddha's mercy.
May all iniquities be eradicated, And good roots increased.
At the approach of life's end, May we know that time is up.
May the body suffer no ills,
And the mind harbor no attachments,
And the senses yield no confusions, As in Dhyana serenity.
Buddha and the holy ones, Carrying the platform of gold,
Come to meet us, That we may , in a split second.
Be reborn in the Western Pure Land of Ultimate Bliss.
We, as the lotus unfolds, see Buddha,
At once hear the Buddha Vehicle,
Suddenly penetrate Buddha's wisdom,
And deliver all sentient beings, In fulfillment of Bodhi vows .
Buddhas in all places at all times.
Bodhisattvas, Mahasattvas,
Mahaprajnaparamita.

Namo Amitabha!

DEDICATION OF MERIT

May the merit and virtue
accrued from this work
adorn Amitabha Buddha's Pure Land,
repay the four great kindnesses above,
and relieve the suffering of
those on the three paths below.

May those who see or hear of these efforts
generate Bodhi-mind,
spend their lives devoted to the Buddha Dharma,
and finally be reborn together in
the Land of Ultimate Bliss.
Homage to Amita Buddha!

NAMO AMITABHA
南無阿彌陀佛

【印度 HINDI 文：ENLIGHTENED COURAGE，覺醒的勇氣】
財團法人佛陀教育基金會　印贈
台北市杭州南路一段五十五號十一樓
Printed and donated for free distribution by
The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation
11F., 55 Hang Chow South Road Sec 1, Taipei, Taiwan, R.O.C.
Tel: 886-2-23951198 , Fax: 886-2-23913415
Email: overseas@budaedu.org
Website:http://www.budaedu.org
Mobile Web: m.budaedu.org

Printed in Taiwan
3,000 copies; April 2015
IN042-13101